# वैदिक मनुस्मृति

भाष्यकार, संपादक एवं प्रकाशक

**धर्मपाल कपूर**

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

**संस्करण : 2018**
**प्रतियाँ : 1000**

**धर्मपाल कपूर**
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
**मो. 9466111730, 9466112730**

# दो शब्द

भद्र आत्माओ !

वस्तुतः मनुस्मृति 84 विभिन्न स्मृतियों जैसे याज्ञवल्क्यस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, वशिष्ठस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, शुक्रस्मृति आदि स्मृतियों में प्राचीनत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ स्मृति मानी जाती है। यह एक बहुत विशाल एवं विश्वविख्यात ग्रंथ है जिसमें 2672 श्लोक हैं। वास्तव में, प्रस्तुत ग्रंथ का अधिकांश भाग प्रक्षिप्त है। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने अपने विभिन्न ग्रंथों में मनुस्मृति से लगभग 595 श्लोक ही उद्धृत किये हैं जिनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जैसे–

| | | | |
|---|---|---|---|
| **1.** | **सत्यार्थप्रकाश** | **=** | **लगभग 400 श्लोक** |
| **2.** | **संस्कारविधि** | **=** | **लगभग 175 श्लोक** |
| **3.** | **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिक** | **=** | **20 श्लोक** |
| | **कुल जोड़** | **=** | **595 श्लोक** |

इसके अतिरिक्त पंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय विरचित ''विशुद्ध मनुस्मृति'' नामक ग्रंथ में प्रक्षिप्त भाग को निकाल कर 1092 श्लोक उद्धृत किये गये हैं। अतः मैंने भी मनुस्मृति के अनेक भाष्यों का अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् मनुस्मृति में से केवल 484 श्लोकों का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया है और प्रक्षिप्त भाग को निकाल दिया गया है। ये श्लोक ही मुझे वेदानुकूल प्रतीत होते हैं और यही मनुस्मृति का सार है। जैसे कबीर ने भी लिखा है–

**साधु ऐसा चाहिये, जैसे सूप सुभाय।**
**सार सार को गहि रहे, थोथा देह उड़ाय।।**

कबीर जी कहते हैं कि साधु तो ऐसा होना चाहिए कि जो छाज की भाँति समस्त पदार्थों से सार तत्त्व को निकाल ले और शेष को छोड़ दे। केवल सार शब्द को ही ग्रहण कर लेना ही सज्जन पुरुषों का गुण है।

मनुस्मृति में 12 अध्याय हैं जिनके मुख्य विषय क्रमशः ये हैं– 1. आचार महिमा, वर्णधर्म, सृष्टि उत्पत्ति, वेदोत्पत्ति, 2. धर्मस्रोत वेद और ब्रह्मचर्याश्रम, 3. गृहस्थाश्रम, 4. द्विज-गृहस्थ आश्रम, 5. भक्ष्याऽभक्ष्य, विचार 6. वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम, 7. राजधर्म, 8. न्याय-व्यवस्था, 9. पति-पत्नी धर्म, 10 आपद् धर्म, 11. प्रायश्चित विधि, 12. कर्मफल विधान।

यह सारे विश्व की मानव जाति का धर्मग्रंथ है। यह मुमुक्षु से लेकर व्यसनी तक एवं वेदज्ञ से लेकर मूर्ख तक सभी के लिए है। यह गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक मानव के सम्पूर्ण जीवन के लिये सभी बातों का आदेश देता है। प्रत्येक श्लोक के अंत में मूल मनुस्मृति ग्रंथ की श्लोक संख्या दी गई है।

अब प्रश्न उठता है कि धर्माचरण क्या है? आज के युग में हज़ारों मत-मतान्तरों, समुदायों, संगठनों और आंदोलनों ने विशाल मानवता के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। परन्तु धर्माचरण से मेरा तात्पर्य है सार्वभौम धर्म। सार्वभौम धर्म अथवा मानव धर्म के मुख्य चार लक्षण हैं—वेद, स्मृति, सदाचार एवं आत्मा की अनुकूलता। यही धर्माचरण प्रस्तुत ग्रंथ का सारामृत है।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान, रोशन लाल अग्रवाल, नरेश बंसल, जय किशन ने सहयोग प्रदान किया है। मैं इन सबका इस शुभकार्य के लिए अत्यंत कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ। जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं। वस्तुतः बोलना सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन है जैसे कि संस्कृत में एक उक्ति है—

**शतं वदं एकं मा लिख**

अर्थात् सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो। क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गई तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जाती है। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण उसे सुधार अथवा ठीक करने की दृष्टि से सूचित करें, न कि टीका टिप्पणी की दृष्टि से।

धर्म पाल कपूर

दिनांक : 25.08.2018

**(धर्मपाल कपूर)**
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

# निवेदन

स्मृतियों या धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति सर्वाधिक प्रामाणिक आर्ष ग्रंथ है। अनेकों स्मृतियां प्रकाश में आई किन्तु मनूस्मृति के तेज व प्रामाणिकता के समक्ष टिक न सकीं। मनुस्मृति में एक ओर मानव एवं मानव समाज के लिये सांसारिक व्यावहारिक श्रेष्ठ कर्त्तव्यों का विधान वेद की मान्यता पर आधारित है। साथ ही मानव को मुक्ति प्राप्त करने वाले आध्यात्मिक उपदेशों का निरुपण भी है। इसके साथ-साथ सभी धर्मशास्त्रों से प्राचीन और सृष्टि के प्रारम्भिक काल का शास्त्र होने का गौरव भी मनुस्मृति को प्राप्त है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने मनुस्मृति को प्रामाणिक मानते हुए अपने ग्रंथों में मनुस्मृति के श्लोकों को प्रमाण के रूप में प्रकाशित किया हैं महर्षि दयानन्द ने आर्ष और अनार्ष ग्रंथों का भी सत्यार्थप्रकाश में वर्णन किया है। हमारा दुर्भाग्य यह रहा कि स्वार्थी अविद्वान् लोगों ने अपनी आजीविका चलाने के लिये ऋषियों के बनाये ग्रंथों में मिलावट करके उनकी प्रामाणिकता पर कुठाराघात किया हैं इसी प्रकार मनुस्मृति की प्रामाणिकता को धूमिल करने के लिये वेदविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध बातों को श्लोकों के रूप में जोड़ दिया श्री धर्मपाल कपूर जी ने संक्षिप्त में मनुस्मृति के कुछ चुनिंदा एवं लाभप्रद श्लोकों का चयन प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ कर ''वैदिक मनुस्मृति'' में बड़े गहन अध्ययन व अनुशीलन से हिन्दी में अनुवाद किया है, ताकि मनुस्मृति जिसमें प्रक्षिप्त श्लोक भी हैं, उसको पढ़ने से भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है, और वे मनु महाराज की वास्तविक विचारधारा से अनभिज्ञ रह जाते हैं। कुछ अज्ञानी पुरुष जो मनुस्मृति के श्लोकों का ठीक-ठीक अर्थ नहीं जानते वे मनुस्मृति की आलोचना करते हैं। मनुस्मृति में वेदानुसार मनु महाराज ने मानव जाति के कर्म, कर्त्तव्य, अनुशासन आदि का संक्षिप्त में सुनियोजित ढंग से क्रमवार विधान का प्रावधान किया है। यह मानव के चरित्रनिर्माण का सर्वोत्तम ग्रंथ है।

प्रक्षिप्त श्लोकों को शामिल किये जाने से और जो भाष्य अविद्वानों द्वारा बनाये गये हैं, वे सत्यता को धूमिल करते हैं और लोग टीका-टिप्पणी

करते रहते हैं । श्री धर्मपाल कपूर जी ने यह पूरा प्रयत्न किया है कि प्रक्षिप्त श्लोक इसमें शामिल न हों । फिर भी मनुष्य अल्पज्ञ होता है, कोई न कोई त्रुटि अनजाने में रह ही जाती है । मुझे इस पुस्तक के प्रारूप की जांच करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैंने पूरा प्रयास किया है कि गलती न हो, परन्तु फिर भी कोई न कोई गलती रह सकती है, यह स्वभाविक ही है । क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ तो केवल एक ईश्वर ही है ।

यह संक्षिप्त में लिखी गई ''वैदिक मनुस्मृति'' पाठकों को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने में लाभप्रद सिद्ध होगी, ऐसी मुझे आशा है । मैं श्री कपूर के पुस्तकों को प्रकाशित करने के प्रयास की हार्दिक प्रशंसा करता हूँ । विद्या दान सर्वोत्तम दान है, श्री कपूर जी यह दान निःशुल्क पुसतकें वितरण करके इस पुण्य के भागीदार हैं । मैं ईश्वर से उनकी दीर्घ आयु व निरोगी काया प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ, ताकि वह इस कार्य को लम्बे समय तक करते रहें ।

**लालचन्द चौहान**
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591/12, पंचकूला
मो. 8557057170
मा. 7508201740

# विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

# विषयसूची


| क्र.सं. | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | पहला अध्याय<br>(आचार महिमा, वर्णधर्म, सृष्टि उत्पत्ति, वेदोत्पत्ति) | 1 |
| 2. | दूसरा अध्याय<br>(धर्मस्रोत, वेद और ब्रह्मचर्याश्रम) | 16 |
| 3. | तीसरा अध्याय<br>(गृहस्थ आश्रम) | 31 |
| 4. | चौथा अध्याय<br>(द्विज गृहस्थ आचार) | 36 |
| 5. | पाँचवाँ अध्याय<br>(भक्ष्याऽभक्ष्य विचार) | 47 |
| 6. | छठा अध्याय<br>(वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम) | 50 |
| 7. | सातवाँ अध्याय<br>(राजधर्म) | 57 |
| 8. | आठवाँ अध्याय<br>(न्याय-व्यवस्था) | 69 |
| 9. | नौवाँ अध्याय<br>(पति-पत्नी धर्म) | 80 |
| 10. | दसवाँ अध्याय<br>(आपद् धर्म) | 88 |
| 11. | ग्यारहवाँ अध्याय<br>(प्रायश्चित विधि) | 91 |
| 12. | बारहवाँ अध्याय<br>(कर्मफल विधान) | 93 |

# पहला अध्याय

## (आचारमहिमा, वर्णधर्म, सृष्टि उत्पत्ति एवं वेदोत्पत्ति)

**1. मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः,**
**प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ।।1।।**

एकान्त में विराजमान मनु महाराज के समीप जाकर महर्षिगण उनकी विधि के अनुसार अर्चना करके ये वचन बोले ।

**2. भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।**
**अन्तरप्रभवाणां च धर्मन्नो वक्तुमर्हसि ।।2।।**

हे भगवन् ! सभी वर्णों तथा वर्णों के भीतर होने वाले उपवर्णों के धर्मों को आप ही ठीक-ठीक क्रम से अर्थात् वर्णों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के आश्रमों के विषय में हमें बताने की योग्यता रखते हैं ।

**3. त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ।**
**अचिन्त्यस्यामप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित् प्रभो ।।3।।**

स्वामिन् ! आप वेदज्ञ होने से धर्मोपदेश में समर्थ हैं, इस जगत् के कार्यों के जानने वाले हैं । जिनका चिन्तन से पार नहीं पाया जा सकता, अथवा जिनमें असत्य कुछ भी नहीं है और जिनमें अपरिमित विद्याओं का वर्णन है । वेदार्थ को जानने वाले एक आप ही हैं । इस समय सब धर्मों के विशेषज्ञ आप ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अतः आप ही उन्हें कहिए ।

**4. स तैः पृष्टस्तथा सम्यग् अमितौजा महात्मभिः ।**
**प्रत्युवाचार्च्य तान् सर्वान् महर्षीन् श्रूयतामिति ।।4।।**

उन महात्माओं के श्रद्धापूर्वक पूछने पर अमित ज्ञानसम्पन्न मनु महाराज ने उन ऋषियों का सत्कार करने के पश्चात् उत्तर दिया—आप सुनिये ।

5. **आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।**
**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ।। 5 ।।**

यह जगत् सृष्टि से पूर्व अंधकार में लीन था, उस समय न किसी के जानने न तर्क में लाने और इन्द्रियों से जानने योग्य कुछ नहीं था, न इसका कोई चिह्न था । यह जगत् जैसे सब ओर सोया पड़ा हो । किन्तु वर्तमान में जाना जाता है ।

6. **ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।**
**महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ।। 6 ।।**

तब प्रभु स्वयं अपने कार्यों को करने में समर्थ, किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा न रखने वाले, स्थूल रूप में प्रकट न होने वाला अपनी अप्रतिहत शक्ति से प्रलय की अवस्था को नष्ट करते हुए पांच महाभूतों अग्नि, वायु आदि को प्रकट किया अर्थात् इस जगत् को अप्रकटावस्था से प्रकटावस्था में लाकर अपने को प्रकाशित किया ।

7. **तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौ जसाम् ।**
**सन्निवेश्याऽऽत्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ।। 16 ।।**

उन तत्त्वों में से अधिक शक्ति वाले छः तत्त्वों के सूक्ष्म अवयवों-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच तन्मात्रायें तथा छटे अहंकार के सूक्ष्म अवयवों को उनके आत्मभूत तत्त्वों के विकारी अंशों अर्थात् कारणों में मिला कर सब पांचों सूक्ष्म-भूतों आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी की सृष्टि की ।

8. **सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।**
**वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।। 21 ।।**

उस प्रभु ने सृष्टि के आदि में वेद से ही 'नर, गौ, अश्व' आदि सभी के पृथक्-पृथक् नामों, पृथक्-पृथक् कर्मों तथा भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं का निर्माण किया । ब्राह्मण के वेदाध्ययन, याजन, क्षत्रिय का रक्षा करना, वैश्य का कृषि, गोरक्षा, व्यापार आदि ।

9. **अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।**
**दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् । । 23 । ।**
उस प्रभु ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके ऋक्, यजु और साम नाम वाले ब्रह्म ने यज्ञ की सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और आदित्य के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये ।

10. **यं तु कर्मणि यस्मिन् सन्ययुङ्क्त प्रथम प्रभुः ।**
**स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः । । 28 । ।**
उस परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में जिस प्राणी को जिस कर्म में लगाया प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति समय में वह फिर उत्पन्न होता हुआ अर्थात् जन्म धारण करता हुआ उसी कर्म को अपने आप प्राप्त करने लगा ।

11. **यथर्तु लिंगान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ।**
**स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः । । 30 । ।**
जैसे ऋतुएं, ऋतु परिवर्तन होने पर अपने आप ही अपने-अपने ऋतु चिह्नों जैसे बसन्त आने पर कुसुम-विकास, आम्र मंजरी आदि को प्राप्त करती हैं । उसी प्रकार अपने-अपने कर्मों को प्राप्त करते हैं अर्थात् अपने कार्यों में संलग्न हो जाते हैं ।

12. **लोकानां तु विवृद्धयर्थ मुखबाहूरूपादतः ।**
**ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्र च निरवर्तयत् । । 31 । ।**
फिर उस परमात्मा ने प्रजाओं अर्थात् समाज की विशेष वृद्धि, शान्ति, समृद्धि एवं प्रगति के लिए मुख, बाहु, जंघा और पैर के गुणों की तुलना के अनुसार क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण को निर्मित किया ।

13. **येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।**
**तत्तथा वोऽभिधास्यामि कृमयोगं च जन्मनि । । 42 । ।**
इस संसार में जिन वर्णगत मनुष्यों का जैसा कर्म वेदों में कहा है, उसे

वैसे ही और उत्पन्न होने में जीवों का जो एक निश्चित् प्रकार रहता है, उसे आप लोगों को कहूँगा ।

**14. पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।**
**रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ।। 43 ।।**

ग्राम्यपशु गौ आदि अहिंसक वृति वाले वन्यपशु हिरण आदि और दोनों ओर दांत वाले हिसंक वृत्ति वाले पशु सिंह, व्याघ्र आदि तथा राक्षस पिशाच तथा मनुष्य ये सब जरायुज अर्थात् झिल्ली से पैदा होने वाले हैं ।

**15. अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।**
**यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ।। 44 ।।**

पक्षी, सांप, मगरमच्छ, मछलियां तथा कछुए और अन्य जो इस प्रकार के भूमि पर रहने वाले और जल में रहने वाले जीव हैं, वे सब अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होने वाले हैं ।

**16. स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।**
**ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ।। 45 ।।**

डंक से काटने वाले मच्छर आदि जूँ, मक्खियां, खटमल आदि भी जो इस प्रकार के जीव हैं, जो उष्मा अर्थात् सीलन और गर्मी से पैदा होते हैं । वे सब स्वेदज अर्थात् पसीने से उत्पन्न होते हैं ।

**17. उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।**
**ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्प फलोपगाः ।। 46 ।।**

बीज और शाखा से उत्पन्न होने वाले सब स्थावर जीव वृक्षादि उद्भिज भूमि को फाड़ कर उगने वाले कहाते हैं । इनमें फल आने पर पककर सूख जाने वाले और जिन पर बहुत फूल-फल लगते हैं वे औषधि कहलाते हैं ।

**18. अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।**
**पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तुभयतः स्मृता ।। 47 ।।**

जिन पर बिना फूल आये ही फल लगते हैं, वे वनस्पतियाँ कहलाती हैं । जैसे बढ़, पीपल, गूलर आदि और फूल लग कर फल लगने वाले दोनों से युक्त होने के कारण उद्‌भिज स्थावर जीव वृक्ष कहलाते हैं ।

**19. गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।**
**बीजकाण्ड रुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च ।। 48 ।।**

अनेक प्रकार के जड़ से गुच्छे के रूप में बनने वाले झाड़ आदि जड़ से अनेक भागों में फूटने वाले ईख आदि उसी प्रकार घास की सब जातियां बीज और शाखा से उत्पन्न होने वाले उग कर फैलने वाली दूब आदि और उग कर किसी का सहारा लेकर चढ़ने वाली बेलें, ये सब स्थावर भी उद्‌भिज कहलाते हैं ।

**20. तमसा बहुरुपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।**
**अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुः खसमन्विताः ।। 49 ।।**

पूर्व जन्मों के बुरे कर्मों के फल के कारण बहुत प्रकार के अज्ञान आदि तमोगुण से आवेष्टित घिरे हुए ये स्थावर जीव सुख-दुःख के भावों से संयुक्त हुए आन्तरिक चेतना वाले होते हैं । अर्थात् इनके भीतर चेतना तो होती है किन्तु चर प्राणियों के समान बाहरी क्रियाओं में प्रकट नहीं होती । अत्यधिक तमोगुण के कारण चेतना और भावों का प्रकटीकरण नहीं हो पाता ।

**21. यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।**
**यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वे निमीलति ।। 52 ।।**

जब वह परमात्मा जागता है अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति के लिये प्रवृत होता है, तब समस्त संसार चेष्टायुक्त समस्त विकृतियों की उत्पत्ति, पुनः प्राणियों का श्वास-प्रश्वास चलना आदि होता है, और जब यह शान्त आत्मा वाला सभी कार्यों में शान्त होकर सोता है अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति, स्थिति के कार्य से निवृत्त हो जाता है, तब यह समस्त संसार प्रलय को प्राप्त हो जाता है ।

**22. तस्मिन्स्वपिति सुस्थे तु कर्मात्मानः शरीरिणः ।**
**स्वकर्मन्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति । । 53 । ।**

सृष्टिकर्म से निवृत हुए उस परमात्मा के सोने पर श्वास-प्रवास, चलना-सोना आदि कर्मों के लगे रहने का स्वभाव है जिनके, ऐसे देहधारी जीव भी अपने-अपने कर्मों से निवृत हो जाते हैं और महत्तत्व उदासीनता सब कार्य व्यापारों से विरत होने की अवस्था को या अपने कारण में लीन होने की अवस्था को प्राप्त करता है ।

**23. युगपतु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि । ।**
**तदायं सर्व-भूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः । । 54 । ।**

उस सर्वव्यापक परमात्मा के आश्रय में जब एक साथ ही सब प्राणी चेष्टाहीन होकर लीन हो जाते हैं, तब यह सब प्राणियों का आश्रय-स्थान परमात्मा सृष्टि-संचालन के कार्यों से निवृत हुआ सुखपूर्वक सोता है । अर्थात् प्रलयावस्था होती है ।

**24. निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः ।**
**त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्याद् अहोरात्रं तु तावतः । । 64 । ।**

अठारह निमेषों (निमेष—आँख की स्वाभाविक झपकन) की एक काष्ठा होती है; उन तीस काष्ठाओं की एक कला, तीस कलाओं का मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है ।

**25. अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।**
**रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः । । 65 । ।**

व्यक्ति और देव सम्बन्धी दिन-रातों को सूर्य विभक्त करता है । रात प्राणियों के सोने के लिए और दिन कर्मों के अनुष्ठान के लिए होता है ।

**26. ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ।**
**एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत । । 68 । ।**

ब्रह्म के दिन और रात का तथा एक-एक युगों का जो काल परिमाण है उसे क्रमानुसार संक्षेप से सुनिये ।

**27. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।**
**तस्य यावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।। 69 ।।**

4000 दिव्य वर्षों का एक सतयुग होता है, उस युग की 400 वर्ष की संध्या और उतने ही वर्षों का अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है ।

युग के आरम्भ होने से पहले का जो संधिकाल है, उसे सन्ध्या कहते हैं और युग के समाप्त होने और दूसरे युग की संध्या के आरम्भ होने से पूर्व का जो संधिकाल है उसे संध्यांश कहते हैं ।

**28. इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।**
**एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ।। 70 ।।**

त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन तीनों के युग-परिमाण, संध्या-परिमाण तथा संध्यांश-परिमाण एक हज़ार तथा एक सौ कम करते जाने पर उनका काल परिणाम निकल जाता है अर्थात् 4800 दिव्य वर्षों का सत्युग होता है । उसकी संख्या में से एक सहस्र और संध्या 400 वर्ष व संध्यांश 400 वर्षों में से एक एक सौ घटाने से 3000 दिव्य वर्ष+300 संध्या वर्ष+300 संध्यांश वर्ष =3600 दिव्य वर्षों का त्रेतायुग होता है । इसी प्रकार 2000+200+200=2400 दिव्य वर्षों का द्वापर और 1000+100+100=1200 दिव्य वर्षों का कलियुग होता है ।

**29. यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।**
**एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ।। 71 ।।**

चतुर्युग की जो पहले दो श्लोकों में गिनती दी गई है, वह 12000 दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, उसे मानुष में बदलने के लिए 360 से गुणा करने पर 43,20,000 मानुष वर्षों की एक चतुर्युगी होती है ।

**30. दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ।**
**ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिरेव च ।। 72 ।।**

देव युगों को 1000 से गुणा करने पर एक ब्राह्म दिन बनता है और इतने ही काल की ब्राह्म रात समझनी चाहिए ।

**31. तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।**
**प्रतिबुद्धऽश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् । । 74 ।**

वह प्रलय अवस्था में सोया हुआ सा परमात्मा उस दिन रात के बाद प्रवृत्त होता है और जो जागकर कारण रूप में विद्यमान रहे और जो विकारी अंश से कार्यरूप में अविद्यमान रहे, ऐसे स्वभाव वाले महत् नामक प्रकृति के आद्यकार्यतत्व की सृष्टि करता है ।

**32. मनः सृष्टिः विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।**
**आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः । । 75 । ।**

सृष्टि रचने की इच्छा से प्रेरित परमात्मा महतत्त्व को विकारी भाव में लाता है अहंकार के रूप से विकृत करता है फिर उसके विकारी अंश से प्रेरित हुआ आकाश प्रकट होता है, जिस आकाश का गुण शब्द कहा है । वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती । क्योंकि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सके? (स.प्र. अष्टम समु.)

**33. आकाशात्तु विकुर्वाणात् सर्वगन्धवहः शुचिः ।**
**बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । । 76 । ।**

विकृतिरूप आकाश के अंश से सभी प्रकार के गन्धों का वहन करने वाला शुद्ध और बलवान् वायु प्रकट होता है, उस वायु का गुण स्पर्श होता है ।

**34. वायोरपि विकुर्वाणाद् विरोचिष्णु तमोनुदम् ।**
**ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत् तद्रूपगुणमुच्यते । । 77 । ।**

उस वायु के विकृतिरूप अंश से प्रकाशयुक्त, अंधकार की नाशक चमकती ज्योति अग्नि प्रकट होती है, उसका गुण रूप है ।

**35. ज्योतिषश्च विकुर्वाणाद् आपो रसगुणाः स्मृताः ।**
**अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिर्, इत्येषा सृष्टिरादितः । । 78 । ।**

अग्नि के विकारोत्पादक अंश से रस गुण वाला जल उत्पन्न होता है और जल से गंध गुण वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई। इस प्रकार आदि से लेकर यहां तक वर्णित सृष्टिसृजन होने की प्रक्रिया है।

**36. यत्प्राग्द्वादशसाहस्रसुदितं दैविकं युगम्।**
**तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते।।79।।**

पहले 12000 दिव्य वर्षों का एक देव युग कहा है यदि उसे 71 से गुणा किया जाए तो 8,52,000 दिव्य वर्षों का अथवा 8,52,000 ×360=30,67,20,000 मानुष वर्षों का एक मन्वन्तर होता है। अर्थात् 71 चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है।

**37. मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च।**
**क्रीडन्निवैतत् कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः।।80।।**

असंख्य बार मन्वन्तर आते हैं, सृष्टि का उत्पादन तथा संहार भी होता रहता है। सर्वशक्तिमान प्रभु सृष्टि की रचना तथा संहार खेल के समान बार-बार करता रहता है।

**38. सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।**
**मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्।।87।।**

इस समस्त संसार की गुप्ति अर्थात् सुरक्षा, व्यवस्था एवं समृद्धि के लिए महातेजस्वी परमात्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पैर की तुलना से निर्मितों के अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के पृथक-पृथक कर्म बनाये।

**39. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।**
**दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।88।।**

ब्राह्मणों के पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और दान लेना ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं। इनमें तीन कर्म धर्म के और तीन आजीविका के हैं। पढ़ाकर और यज्ञ कराकर जीविका करनी उत्तम है।

**40. प्रजानां रक्षणं दानम् इज्याऽध्ययनमेव च ।**
**विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।। 89 ।।**

क्षत्रिय के संक्षेप से ये धर्म हैं—प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ, पढ़ना और विषयों में अनासक्त होकर सदा जितेन्द्रिय रहना, दुर्व्यसनों से पृथक रहकर शुभ कर्मों में सदा प्रवृत रहना ।

**41. पशूनां रक्षणं दानम् इज्याध्ययनमेव च ।**
**वणिकपथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।। 90 ।।**

वेश्यों के ये कर्म हैं—पशु-पालन, दान यज्ञ, पढ़ना, वस्तुओं का क्रय-विक्रय, अधिक ब्याज न वसूलना तथा कृषि ये वैश्य के कर्म हैं ।

**42. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।**
**एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।। 91 ।।**

परमेश्वर ने जो विद्या हीन जिसको पढ़ने से विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो, उसे यही एक सेवा का कर्म करने की आज्ञा दी है ।

**43. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।**
**तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मावान् द्विजः ।। 108 ।।**

वेदों और स्मृतियों में आचरण को परम धर्म कहा हुआ है; वही आचरण सर्वश्रेष्ठ वर्णित है । इसलिए समर्थ द्विज को इस धर्म के पालन में सदा तत्पर रहना चाहिए ।

**44. आचाराद्विच्युतो विप्रो, न वेदफलमश्नुते ।**
**आचारेण तु संयुक्तः, सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ।। 109 ।।**

जो द्विज सद् आचरण से भ्रष्ट है वह वेद प्रतिपादित धर्मजन्य सुख फल को प्राप्त नहीं कर सकता । परन्तु जो धर्माचरण सम्पन्न है, उसे सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है ।

**45. एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।**
**सर्वस्य तपसो मूलम् आचारं जगृहुः परम् ।। 110 ।।**
उपर्युक्त आचरण से धर्म की प्राप्ति को जान कर मुनिजनों ने आचरण को ही सभी तपों का परम मूल कहा है ।

**46. विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर् नित्यमद्वेषरागिभिः ।**
**हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ।। 120 ।।**
जिसका सेवन राग-द्वेष से रहित, सदाचारी विद्वानों ने अपने हृदय से स्वीकार किया है तथा जिसे सदा अपना सत्य आचरण कर्त्तव्यजानने के लिए में उपयुक्त कहा है, उसे धर्म जानिए ।

**47. कामात्मता न प्रशस्ता, न चैवेहास्त्यकामता ।**
**काम्यो हि वेदाधिगमः, कर्मयोगश्च वैदिकः ।। 121 ।।**
अत्यन्त कामना अर्थात् फल की अभिलाषा प्रशंसनीय नहीं है और न ही सर्वथा कामना का अभाव प्रशंसनीय है । वेदार्थ ज्ञान और वेदोक्त कर्म की प्राप्ति तथा वैदिक कर्मयोग कामना के योग्य हैं । अर्थात् इनकी कामना करनी चाहिए ।

**48. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ।**
**व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ।। 122 ।।**
जो कोई कहे कि मैं निष्काम हूँ वा हो जाऊँ वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि काम संकल्प से ही बनते हैं, यज्ञ भी संकल्प से सम्पन्न होते हैं, सभी व्रत, यम और धर्म संकल्प से ही सिद्ध होते हैं । अर्थात् सभी शुभ आचरण संकल्प से ही प्रत्येक इच्छा उत्पन्न होती है ।

**49. अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।**
**यद् यद्धि कुरुते किंचित् तत्तात्कामस्य चेष्टितम् ।। 123 ।।**
संसार में कामना हीन पुरुष का कोई भी कर्म दिखाई नहीं देता । जो कोई भी छोटे-से-छोटा कर्म किया जाता है, वह कामना के ही अधीन

होता है । जो जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं ।

**50. तेषु सम्यग् वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ।**
**यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान् कामान् समश्नुते ।। 124 ।।**

उन वेदोक्त कर्मों में ठीक व्यवहार करने से व्यक्ति मृत्यु के भय रूपी पाश से छूट कर अमरलोक मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और इच्छानुसार संकल्प की गई सभी भोगों का उपभोग करता है ।

**51. वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।**
**आचारश्चैव साधूनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च ।। 125 ।।**

सम्पूर्ण वेद शास्त्र, सत्पुरुषों के आचार धर्म के ज्ञान में प्रमाण हैं, वेदज्ञों की स्मृति तथा शील भी धर्म में प्रमाण है । सज्जन पुरुषों का आचरण तथा आत्म-सन्तोष भी धर्म में प्रमाण है । जिस कार्य के करने में आत्मा में भय, लज्जा, शंका हो वह कर्म करने योग्य नहीं हैं ।

**52. सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।**
**श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ।। 127 ।।**

बुद्धिमान् अपने ज्ञानचक्षु से वेद शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध विचार कर श्रुति प्रमाण व वेद-प्रतिपादित होने के कारण उस धर्म को अपने आचरण में लाए ।

**53. श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।**
**इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।। 128 ।।**

श्रुति तथा स्मृति में प्रतिपादित धर्म पर आचरण करने वाला व्यक्ति इस संसार में यशस्वी बनता है और भावी जन्म में अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है । जो वेद से अविरुद्ध धर्म का अनुष्ठान करता है ।

**54. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।**
**ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निबंभौ ।। 129 ।।**

श्रुति को वेद समझना चाहिए और धर्मशास्त्र को स्मृति समझना

चाहिए। ये श्रुति और स्मृति शास्त्र सब स्थितियों और सब बातों में कुतर्क न करने योग्य हैं। अर्थात् इनमें प्रतिपादित बातों का कुतर्क का सहारा लेकर खण्डन नहीं करना चाहिए।

**55. योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ।। 130 ।।**

जो व्यक्ति श्रुति और स्मृति का वेदानुकूल आप्त ग्रंथों का तर्कशास्त्र के आश्रय से निरादर करता है, वह सज्जनों से परित्याज्य है, क्योंकि वह वेदनिंदक नास्तिक कहलाता है।

**56. वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ च प्रियमात्मनः।**
**एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।। 131 ।।**

वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचरण, अपनी आत्मा के अविरुद्ध ये चार धर्म के प्रिय लक्षण कहे गये हैं।

**57. अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।**
**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।। 132 ।।**

जो व्यक्ति अर्थ स्वर्णादि रत्न और काम स्त्री सेवन आदि में तथा काम में अनासक्त हैं, उनके लिए धर्म का ज्ञान विहित है। धर्म की जिज्ञासा वाले को धर्म का ज्ञान होता है, उनके लिए परम प्रमाण श्रुति है। क्योंकि वेद के बिना धर्म-अधर्म का निश्चय ठीक-ठीक नहीं होता।

**58. श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यातत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।**
**उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ।। 133 ।।**

जहां कहीं श्रुति वेद में दो पृथक् आदेश विहित हों वे दोनों ही विधान धर्म माने हैं। मनीषी विद्वानों ने उन दोनों को ही श्रेष्ठ धर्म स्वीकार किया है।

**59. उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।**
**सर्वथा वर्तते यज्ञं इतीय वैदिकी श्रुति। 134 ।।**

सूर्योदय के समय और सूर्यास्त के समय तथा किसी भी निर्धारित किये समय में विशेष उपलक्ष्य में आयोजित यज्ञ सब स्थितियों में यज्ञ कर लेना चाहिए । इस प्रकार ये तीनों ही धर्म है ।

**60. सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।**
**तं देवनिमितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते । । 136 । ।**

देव अर्थात् विद्वानों के संग से युक्त सरस्वती और दृषवती नदियां, उनमें सरस्वती नदी जो पश्चिम में वर्तमान उत्तर से दक्षिण में गिरती है, जिसे सिन्धु नदी कहा जाता है और पूर्व में जो उत्तर दक्षिण समुद्र में गिरती है, जिसे ब्रह्मपुत्र कहते हैं, इन दोनों नदियों के बीच विद्वान आर्यों द्वारा सुशोभित आर्यावर्त कहलाता है ।

**61. तस्मिन् देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।**
**वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते । । 137 । ।**

उस आर्यवर्त्त देश में वर्णों का तथा वर्णों के अन्तर्गत उपवर्णों का परम्परागत जो आचार-व्यवहार चला आ रहा है, उसे ही सदाचार कहा गया है । जो वेदों के प्रारम्भ से लेकर उत्तरोत्तर क्रम से पालित जो आचार है ।

**62. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः । । 139 । ।**

इसी आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों से भूगोल के सब मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें ।

**63. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं सत्प्राग्विनशनादपि ।**
**प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः । । 140 । ।**

हिमालय और विंध्याचल के मध्यवर्ती तथा पूर्व में विनशन - सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान से लेकर और प्रयाग से पश्चिम तक मध्यप्रदेश कहा जाता है ।

**64. आसमुद्रात्तु वै पूर्वाद् आसमुद्रात्तु पश्चिमात् ।**
**तयोरेवान्तरं गिर्योर् आर्यावर्तं विदुर्बुधाः ।। 141 ।।**

जो पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र पर्यन्त विद्यमान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में स्थित विन्ध्याचल का मध्यवर्ती देश है, उसे विद्वान् आर्यवत् कहते हैं ।

**65. कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।**
**स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ।। 142 ।।**

जिस देश में स्वभाविक रूप से कृष्णमृग (काले हिरण) विचरण करता है आर्यावर्त देश यज्ञों से सम्बन्ध पवित्र, श्रेष्ठ, अथवा श्रेष्ठ कर्मों वाले व्यक्तियों से युक्त देश है, ऐसा समझना । इस आर्यावर्त से आगे म्लेच्छ भाषाभाषी व्यक्तियों अथवा अशिक्षित व्यक्तियों के देश हैं ।

**66. एशा धर्मस्य वो योनि समासेन प्रकीर्तिता ।**
**सम्भवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निवोधत ।। 144 ।।**

धर्म की उत्पत्ति और इस समस्त जगत् की उत्पत्ति आप लोगों को कही, अब धर्मों को सुनें । द्वितीय अध्याय में ब्रह्मचर्याश्रम के धर्म का वर्णन किया जायेगा ।

# दूसरा अध्याय

## (धर्म-स्रोत वेद और ब्रह्मचर्याश्रम)

**1. वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर् निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।**
**कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।1।।**

पवित्र वैदिक कर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शारीरिक पुण्य कर्मो द्वारा गर्भाधानादि संस्कार कराने चाहियें। वे संस्कार इस जन्म और परजन्म की पवित्रता को करने वाले होते हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक 16 संस्कार हैं।

**2. स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस् त्रैविद्येनेजयया सुतैः ।**
**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।।3।।**

निम्नलिखित कार्यों से यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति के योग्य किया जाता है—स्वाध्याय, व्रत, होम, त्रयीविद्या, इज्या तथा किए जा रहे यज्ञ और महायज्ञ। विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथि यज्ञ अवश्य करें।

**3. प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते ।**
**मंत्रवत् प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ।।4।।**

नाभि की नाल के छेदन से पहले जातकर्म-संस्कार किया जाता है। उसमें मन्त्र बोल कर बच्चे को सोने की सिलाई से शहद और घी को समान मात्रा में चटावें और मंत्र का उच्चारण करें।

**4. नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ।**
**पुण्ये तिथौ मूहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।।5।।**

बच्चे का नामकरण संस्कार जन्म से दसवें अथवा बारहवें दिन अर्थात् सुविधानुसार पुण्य तिथि, मुहूर्त और शुभ गुणयुक्त नक्षत्र में करना चाहिए।

5. **स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूर विरपष्टार्थ मनोहरम् ।**
**मंगल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ।।8।।**
स्त्रियों का नाम उच्चारण किये जा सकने वाला, कोमल वर्ण वाला, स्पष्ट अर्थ वाला, मन को आकर्षक लगने वाला जैसे कल्याणी, वन्दना, विद्यावती, कमला, सुशीला, सुषमा आदि रखना चाहिए ।

6 **चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।**
**षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले ।।9।।**
जन्म से चौथे मास के बाद बच्चे का निष्क्रमण अर्थात् घर से बाहिर ले जाने का संस्कार और छठे महीने अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए । अथवा इच्छानुसार उचित दिन को उपर्युक्त संस्कार कर लेने चाहिएं । जब भी परिवार में अभीष्ट अथवा शुभ समय प्रतीत हो ।

7. **चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।**
**प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।।10।।**
सभी आर्यों का मुण्डन-संस्कार धर्मानुसार, वेद की आज्ञानुसार पहले वर्ष अथवा तीसरे वर्ष में वैदिक पद्धति के अनुसार करना उचित है ।

8. **गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।**
**गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।।11।।**
ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भ से आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष कर लेना चाहिए । यज्ञोपवीत अथवा गुरु के पास विद्या ग्रहण करने के लिये भेजना उपनयन संस्कार है ।

9. **उपस्पृश्य द्विजो नित्यम् अन्नमद्यात् समाहितः ।**
**भुक्त्वा चोपस्पृशेत् सम्यग् अद्भिः खानि च संस्पृशेत् ।।28।।**
व्यक्ति को सदा आचमन करके ध्यानपूर्वक भोजन करना और भोजन करने के पश्चात् भी आचमन करना चाहिए और उसके साथ हाथ मुँह आदि अंगों को भी जल से शुद्ध कर लेना उचित है ।

10. **पूजयेदशनं नित्यम् अद्याच्चैतदकुत्सयन् ।**
**दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।। 29 ।।**
सदा भोजन की प्रशंसा करनी चाहिए, निन्दा न करते हुए उस भोजन का उपभोग करना चाहिए। भोजन को देखकर मन में प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होना और सदा उसकी प्रशंसा करें।

11. **पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ।**
**अपूजितं तु तद् भुक्तम् उभयं नाशयेदिदम् ।। 30 ।।**
श्रद्धा आदरपूर्वक और प्रशंसित किया गया भोजन हमेशा बल और स्मृद्धि देता है और निन्दापूर्वक खाया भोजन बल और स्फूर्ति का नाश कर देता है।

12. **नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात् नाद्याच्चैव तथान्तरा ।**
**न चैवात्यशनं कुर्यान् न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत् ।। 31 ।।**
किसी को भी अपना झूठा भोजन नहीं देना चाहिए न किसी का झूठा भोजन खायें। जो समय भोजन के लिए नियत है उसके मध्य कुछ नहीं खाना चाहिए। अत्यधिक भोजन न करें और न भोजन किये पश्चात् बिना हाथ मुख धोये कहीं जाएं।

13. **अनारोग्यमनायुष्यम् अस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।**
**अपुण्यं लोकविद्वष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ।। 32 ।।**
अत्यधिक भोजन रोग को लाने वाला, आयु को कम करने वाला, दुःख देने वाला, सुखनाशक, जनता द्वारा निन्दा के योग्य माना गया है। अतः उसे त्याग दें।

14. **उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।**
**आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ।। 44 ।।**
गुरु शिष्य का उपनयन यज्ञोपवीत संस्कार करके सबसे पहले उसे शरीर की पवित्रता का उपदेश करे और इसके साथ ही शुद्धाचरण, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना की विधि सिखानी चाहिए।

**15. अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।**
**वेदत्रयानिन्दुहद् भूर्भुवः स्वरितीतिः च ।। 51 ।।**

परमात्मा ने ओ३म् शब्द के अ, उ, म् अक्षरों को तथा भूः भुवः, स्वः गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहृतियों को तीनों वेदों से दुहकर साररूप में निकाला है ।

**16. त्रिभ्यः एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।**
**तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।। 52 ।।**

सबसे महान् परमात्मा ने इस पद से प्रारम्भ होने वाली सावित्री ऋचा (गायत्री मंत्र) का एक-एक पाद तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में बनाया है ।

**17. एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।**
**संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ।। 53 ।।**

इस ओ३म् अक्षर को और भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित इस गायत्री मंत्र को वेद पाठी द्विज दोनों संध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है ।

**18. इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।**
**संयमे यत्नमतिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।। 63 ।।**

छात्र को उचित है कि वह मन और आत्मा को पाप रूप विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों को बड़े यत्न से वश में रखे, जैसा कि चतुर सारथी घोड़े को अपने वश में रखते हैं ।

**19. श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी ।**
**पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ।। 65 ।।**

कान, त्वचा, आँखें, जिह्वा और पाँचवीं नासिका, मलद्वार, मूत्रद्वार, हाथ, पाँव और दसवीं वाणी ये इन्द्रियाँ इस शरीर में हैं ।

**20. बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।**
**कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ।। 66 ।।**

इनमें से कान से लेकर क्रमशः नासिका तक पाँच ज्ञानेन्द्रियां और मल-विसर्जन करने वाली इन्द्रियों से लेकर वाणी तक पाँच कर्मेन्द्रियां कुल दस इन्द्रियाँ कहा है ।

**21. एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।**
**यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ।। 67 ।।**

ग्यारहवां मन है। वह अपने स्तुति आदि गुणों के कारण दोनों ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय से संबंध करता है । अर्थात् यह मन ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के सम्पर्क में रहता है, मन एक समय में एक ही इन्द्रिय के साथ रहता है। इस मन के जीत लेने से दोनों ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां जीत ली जाती हैं ।

**22. इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।**
**संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ।। 68 ।।**

जीवात्मा इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसंदेह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त इन्द्रियों को वश में करके पश्चात् सिद्धि को प्राप्त होता है ।

**23. न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यति ।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। 69 ।।**

यह निश्चय है कि जैसे विषयों के उपभोग से विषयों के भोगने की कामना कभी शान्त नहीं होती अपितु अधिक बढ़ती है । वैसे ही जैसे अग्नि में घृतादि के डालने से अग्नि शांत नहीं होती अपितु अधिक बढ़ती जाती है । इसके लिए मन पर नियंत्रण करना पड़ता है ।

**24. यवैश्तान् प्राप्नुयात् सर्वान् यश्चतान् केवलाँस्त्यजेत् ।**
**प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ।। 70 ।।**

जो इन (विषयोपभोग की कामनाओं) की इच्छा करता है, और जो इन

(विषयों की कामनाओं) को छोड़ देता है उन सब कामनाओं को इच्छा प्राप्ति से कामनाओं का परित्याग ही अधिक अच्छा कहा है । परित्याग के ज्ञान से इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है ।

**25. न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।**
**विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ।। 71 ।।**

विषयों में आसक्त इन इन्द्रियों को विषयों का सेवन न करने से वश में नहीं किया जा सकता अपितु नित्यप्रति ज्ञानपूर्वक विषयोपभोग में लगी हुई इन इन्द्रियाँ को विषयत्याग के ज्ञान से वश में किया जा सकता है ।

**26. वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।**
**न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ।। 72 ।।**

अत्यन्त दुष्ट भाव वाले व्यक्ति का वेद का पठन-पाठन का करना, त्याग (दान) यज्ञ नियम (व्रत) और तप कभी सफल नहीं होते हैं । जो अजितेन्द्रिय पुरुष हैं उनको विप्रदुष्ट कहते हैं ।

**27. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।**
**न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ।। 73 ।।**

जितेन्द्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुनके हर्ष, निन्दा सुनके शोक, अच्छे स्पर्श से सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप से प्रसन्न और दुष्ट रूप से अप्रसन्न तथा उत्तम भोजन से आनन्दित और निकृष्ट भोजन से दुःखित नहीं होता ।

**28. इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।**
**तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ।। 74 ।।**

पात्र में एक छोटे से छिद्र से जैसे जल बह जाता है वैसे ही सब इन्द्रियों में से यदि एक भी इन्द्रिय दोषयुक्त हो जाती है, तो उसी इन्द्रिय के द्वारा व्यक्ति की बुद्धि नष्ट होने लगती है ।

**29. वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।**
**सर्वान् संसाधयेदर्थान् अक्षिण्वन् योगतस्तनुम् । । 75 । ।**

पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा पांच कर्मेन्द्रियों को वश में करके मन को संयत करके युक्ताहार विहार रूप योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे ।

**30. पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात् ।**
**पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात् । । 76 । ।**

दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः सन्ध्या सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यन्त सायंकाल में भली-भांति स्थित होकर गायत्री मंत्र के जप द्वारा सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए ।

**31. न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।**
**स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः । । 78 । ।**

जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं संध्योपासना को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझ कर द्विजकुल से अलग करके शूद्र कुल में रख देना चाहिए ।

**32. वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।**
**नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि । । 80 । ।**

वेद के पठन-पाठन में और नित्यकर्म में आने वाले गायत्री जप या संध्योपासना तथा यज्ञ करने में अनध्याय का विचार नहीं होता । इन्हें प्रत्येक स्थिति में करना चाहिए । इनके साथ अनध्याय का विचार लागू नहीं होता ।

**33. यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः ।**
**तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु । । 82 । ।**

जो व्यक्ति वेदों का अध्ययन एवं गायत्री का जप, यज्ञ, उपासना आदि

एकाग्रचित होकर विधिपूर्वक करता है उसके लिए परमात्मा दूध, दही, घी और मधु को बरसाता है ।

**34. नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।**
**जानन्नपि हि मेधावी, जडवल्लोक आचरेत् । । 85 । ।**

बुद्धिमान जानता हुआ भी बिना पूछे किसी से न बोले, तथा अन्याय से भी पूछने पर न बोले । लोक में बुद्धिमान को इन दोनों अवस्थाओं में जड़ की भाँति व्यवहार करना चाहिए । हाँ जो निष्कपट और जिज्ञासु हैं उनको बिना पूछे भी उपदेश करे ।

**35. अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।**
**तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाऽधिगच्छति । । 86 । ।**

जो अन्याय पक्षपात, असत्य का ग्रहण,सत्य का परित्याग, हठ, दुराग्रह इत्यादि अधर्म कर्म से युक्त छल कपट से पूछता है और जो पूर्वोक्त प्रकार से उत्तर देता है, ऐसे व्यवहार में विद्वान् मनुष्य को योग्य है कि न उससे पूछे और न उसको उत्तर देवें । एक जोकि मर्यादा का पालन नहीं करता अपना हनन कर लेता है, अथवा दूसरे के साथ शत्रुता करता है ।

**36. धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।**
**तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे । । 87 । ।**

जहाँ धर्म तथा तदानुकूल अर्थ की प्राप्ति न हो, एवं सेवाभाव भी नहीं, उस शिष्य को विद्या नहीं पढ़ानी चाहिए । वह पढ़ाई हुई विद्या श्रेष्ठ बीज को बंजर भूमि में डाल देने के समान है ।

**37. विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ।**
**असूयकाय मां मा दास् तथा स्यां वीर्यवत्तमा । । 89 । ।**

विद्या विद्वान् के पास जाकर कहने लगी कि मैं तो तेरा कोष हूँ, तू मेरी रक्षा कर । मुझे निन्दक, ईर्ष्यालु और उपेक्षा करने वाले को न दीजिए । तभी मैं बलबती शक्ति सम्पन्न बन सकूंगी ।

**38. यमेव तु शुचिं विद्वान् नियतब्रह्मचारिणम् ।**
**तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने । । 90 । ।**
आप जिसे पवित्र, संयम से युक्त ब्रह्मचारी जानते हैं प्रमादरहित, उस आलस रहित को विद्या रूपी कोष की रक्षा करने में समर्थ व्रतनिष्ठ विद्यार्थी को मुझे प्रदान कीजिए ।

**39. लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽध्यात्मिकमेव च ।**
**आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् । । 92 । ।**
मानव जिससे लोक में काम आने वाला शास्त्र विद्या, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति विज्ञान आदि सम्बन्धी वेद विषयक तथा आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करता है उस गुरु को सबसे पहिले नमस्कार करना उचित है ।

**40. अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।**
**चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् । । 96 । ।**
जो सदा मान्यों की सेवा करता है उनका अभिवादन तथा आदर-सत्कार करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है ।

**41. परपत्नी तु या स्त्री स्याद् असम्बन्धा च योनितः ।**
**तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च । । 104 । ।**
जो कोई दूसरे की स्त्री जिससे अपने साथ कोई सम्बन्ध न हो, उसे भवती, देवी, बहिन इन आदरबोधक शब्दों के सम्बोधन से बुलाना चाहिए ।

**42. वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।**
**एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम् । । 111 । ।**
गौरव के ये पाँच स्थान हैं—एक धन, दूसरा बन्धु-कुटुम्ब-कुल, तीसरा आयु, चौथा उत्तम कर्म और पाचवीं विद्या । इन में धन से उत्तम बंधु, बंधु से अच्छी आयु, आयु से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं ।

**43. चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।**
**स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ।। 113 ।।**

रथ पर बैठे हुए को, 90 वर्ष से ऊपर आयु वाले को; रोगी को; बोझ उठाए हुए को; स्नातक, दूल्हा और राजा को पहले मार्ग दे देना चाहिए ।

**44. उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।**
**संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ।। 115 ।।**

जो विद्वान् शिष्य का उपनयन करके उसे कला सहित, मंत्रों के अर्थ सहित वेद पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं ।

**45. एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।**
**योऽध्याययति वृत्त्यर्थम् उपाध्यायः स उच्चते ।। 116 ।।**

जीविका के लिए वेद के किसी एक भाग या अंश को या फिर वेदागों-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र और ज्योतिष विद्याओं को पढ़ाता है । वह उपाध्याय कहलाता है ।

**46. निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।**
**संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ।। 117 ।।**

जो गर्भाधानादि संस्कारों को विधि के अनुसार कराता है तथा अन्न आदि भोज्य पदार्थों द्वारा बालक का पालन पोषण करता है उस विद्वान् को गुरु कहते हैं ।

**47. अग्न्याधेयं पाकयज्ञान् अग्निष्टोमादिकान् मखान् ।**
**यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ।। 118 ।।**

जो ब्राह्मण किसी के द्वारा वरण किये जान पर अग्निहोत्रादि पाकयज्ञ तथा बड़े-बड़े अग्निष्टोम आदि यज्ञ कराता है उसको ऋत्विक् कहते हैं ।

**48. य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।**
**स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत् कदाचन ।। 119 ।।**
जो गुरु आचार्य दोनों कानों को सत्य वेद ज्ञान से भर देता है, उसे माता और पिता समझना चाहिए। कभी भी उससे द्रोह करना उचित नहीं है।

**49. उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ।**
**ब्रह्मजन्म हि विपस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ।। 121 ।।**
उत्पन्न करने वाले पिता और विद्या या वेद ज्ञान देने वाले आचार्य रूप पिता ही अधिक बड़ा और माननीय है। वेदाध्ययन एवं ईश्वरज्ञान कराना ही इस जन्म और परजन्म में स्थिर रहने वाला है, शरीर तो इस जन्म के साथ ही नष्ट हो जाता है।

**50. कामान्माता पिता चेनं यदुत्पादयतो मिथः ।**
**संभूति तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ।। 122 ।।**
माता और पिता जो इस बालक को मिलकर उत्पन्न करते हैं, वह सन्तान प्राप्ति की कामना से करते हैं, वह जो माता-पिता के गर्भ से उत्पन्न होता है उसका वह साधारण रूप से संसार प्रकट होना मात्र जन्म है, अर्थात् वास्तविक जन्म तो उपनयन में दीक्षित करके शिक्षा के रूप में आचार्य ही देता है जिससे मनुष्य वास्तव में मनुष्य बनता है।

**51. अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।**
**तमपीह गुरुं विद्यात् श्रुतोपक्रियया तया ।। 124 ।।**
अध्यापक बहुत अथवा थोड़ा सा भी पढ़ाने से जिस शिष्य का उपकार करता है, पढ़ाने के उपकार के कारण शिष्य को उसे अपना गुरु ही समझना चाहिए।

**52. न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।**
**ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ।। 129 ।।**

केवल आयु की अधिकता के कारण, श्वेत केशों से, धन की अधिकता से और बन्धओं से कोई बड़ा नहीं बनता। ऋषियों ने इस विधान को बनाया है कि जो कोई विद्या-विज्ञान में अधिक है, वही हम सब में बड़ा है।

**53. विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठयं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।**
**वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः।। 130।।**

ब्राह्मणों का बडप्पन ज्ञान से, क्षत्रियों का बाहु बल से, वैश्यों का धन-धान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध बड़ा होता है।

**54. न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।**
**यो वै युवाऽप्यधीयानस् तं देवाः स्थविरं विदुः।। 131।।**

शरीर के बाल श्वेत हो गए हैं केवल इस कारण वह वृद्ध (मान तथा सेवा के योग्य) नहीं, जो तरुण भी विद्या पढ़ा विद्वान् है उसे ही सभी विद्वान्, वृद्ध (मान तथा सेवा योग्य) कहते हैं।

**55. अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।**
**वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।। 134।।**

प्राणीमात्र के लिए अहिंसा का भाव रखते हुए ही अध्यापक को विद्यार्थियों का अनुशासन करना चाहिए। धर्म का विचार रखते हुए उनके लिए मीठी और स्नेहभरी वाणी बोलना उचित है। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं।

**56. यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग् गुप्ते च सर्वदा।**
**स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्।। 135।।**

जिस व्यक्ति के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित रहते है वही सब वेदांत अर्थात् वेदों के सिद्धान्त रूप फल को प्राप्त होता है।

**57. नारुन्तुदः स्याद् आर्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।**
**ययास्योद्विजते वाचा नाऽलोक्यां तामुदीरयत् ।। 136 ।।**

मनुष्य को स्वयं दुःखी होते भी किसी को पीड़ा देने वाली वाणी नहीं बोलनी चाहिए । दूसरे से द्रोहबुद्धि वाला भी नहीं होना चाहिए । जिस वाणी से किसी का मन दुःखी होता है, लोक के अहित करने वाली उस वाणी का कभी उच्चारण नहीं करना चाहिए ।

**58. समानाद् ब्राह्मणो नित्यम् उद्विजेत विषादिव ।**
**अमृतस्येव चाकाङ्क्षेद् अवमानस्य सर्वदा ।। 137 ।।**

ब्राह्मण को सम्मान से सदा विष के समान डरना चाहिए । सदा अपमान को अमृत समझते हुए उसकी इच्छा करनी चाहिए ।

**59. सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ।**
**सुखं चरति लोकेऽस्मिन् अवमन्ता विनश्यति ।। 138 ।।**

बुद्धिमान को यदि कोई बुरा-भला कहता है, तो वह बुद्धिमान् उपेक्षा करता हुआ सुख से सोता, सुख से जागता और सुख से इस लोक में विचरता है । परन्तु विद्वान् को बुरा-भला कहने वाला स्वयं नष्ट हो जाता है ।

**60. वेदमेव सदाभ्यस्येत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।**
**वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।। 141 ।।**

विद्वान् को तप का जीवन व्यतीत करते हुए वेद का सदा अभ्यास करना चाहिए । इस संसार में विद्वान् के लिए वेदाभ्यास रूपी तप ही परम तप कहा है ।

**61. योऽनधीत्य द्विजो वेदम् अन्यत्र कुरुते श्रमम् ।**
**स जीवन्नेव शूद्रत्वम् आशु गच्छति सान्वयः ।। 143 ।**

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर किन्हीं और ग्रंथों में परिश्रम करता है । वह जीवित अवस्था में ही कुलसमेत शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है ।

62. **वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ।**
**शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् । । 152 । ।**
ब्रह्मचारी को सुरा, मांस, सुगन्धित पदार्थ, पुष्पों की माला, तीखे रस, बासी पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए । स्त्री-संग तथा प्राणि-हिंसा का भी परित्याग कर देना चाहिए ।

63. **द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।**
**स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भम् उपघातं परस्य च । । 154 । ।**
ब्रह्मचारी को जुआ, वितण्डावाद, व्यर्थ का विवाद, परनिन्दा तथा झूठ का परित्याग कर देना चाहिए । स्त्रियों को अनुराग पूर्वक देखना तथा स्पर्श नहीं करना चाहिए । दूसरे का अपकार करना हानि भी उचित है आदि कर्मों को सदा छोड़ देना ।

64. **एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ।**
**कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः । । 155 । ।**
ब्रह्मचारी को अकेले ही सोना चाहिए । उसे वीर्य पात नहीं करना चाहिए । ब्रह्मचारी यदि काम सन्तप्त होकर वीर्य नाश करता है, तो वह अपने व्रत को नष्ट कर देता है ।

65. **गुरोर्यत्र परीवादो, निन्दा वापि प्रवर्तते ।**
**कर्णौ तत्र पिधातव्यौ, गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः । । 175 । ।**
विद्यार्थी के लिए आवश्यक है कि जहाँ पर उसके गुरु की निन्दा हो रही हो, वहाँ उसे कान बंद कर लेने चाहिए अर्थात् उसे नहीं सुनना चाहिए, अथवा वहाँ से किसी दूसरी जगह चला जाना चाहिए ।

66. **गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।**
**पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता । । 187 । ।**
जो विद्यार्थी 20 वर्ष की अवस्था को पहुँच चुका है, गुण और दोषों को जानते हुए उसके लिए युवती गुरुपत्नी के पाँव छू कर अभिवादन करना वर्जित है । अर्थात् बिना चरण स्पर्श के अभिवादन करे ।

**67. अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।**
**प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् । । 189 । ।**
काम और क्रोध के वशीभूत पुरुष को, चाहे वह विद्वान् हो या मूर्ख, स्त्रियां कुमार्ग में डालने के लिए समर्थ होती हैं ।

**68. मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा, न विविक्तासनो भवेत् ।**
**बलवानिन्द्रियग्रामो, विद्वांसमपि कर्षति । । 190 । ।**
माता, बहन और पुत्री के साथ भी एकान्त में नहीं बैठना चाहिए । क्योंकि इन्द्रियाँ बहुत बलवान होती हैं, वह विद्वान् को भी अपनी ओर खींच लेती है । अर्थात् अपने-अपने विषयों में फंसा कर पथभ्रष्ट कर देती हैं ।

**69. यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।**
**तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषरधिगच्छति । । 193 । ।**
जैसे कुदाल से नीचे खोद कर व्यक्ति जल को प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार सेवा की भावना वाला शिष्य भी गुरु के पास विद्यमान विद्या को पा लेता है । सेवा से ही विद्या मिलती है ।

**70. यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित् समाचरेत् ।**
**तत्सर्वमाचरेद् युक्तो यत्र वाऽस्य रमेन्मनः । । 198 । ।**
चाहे कितना भी छोटा पुरुष या स्त्री क्यों न हो, यदि वह भी कोई उत्तम कार्य करता है, तो उससे शिक्षा लेकर उस पर आचरण करना चाहिये । अथवा जहाँ इसका अन्तरात्मा उसे प्रेरणा करता है वह कर्म उसे करना चाहिए ।

# तीसरा अध्याय

## (गृहस्थाश्रम)

1. **गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।**
**उद्वहेत द्विजो भार्या सवर्णां लक्षणान्विताम् ।। 4 ।।**
विद्यासमाप्ति के पश्चात् अर्थात् स्नातक बन कर आचार्य से विधिपूर्वक और अनुमति पूर्वक विद्वान् विद्यार्थी को चाहिए कि वह सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न समान वर्ण की कन्या से विवाह करे ।

2. **न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।**
**गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेना स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ।। 51 ।।**
ज्ञानवान् पिता कन्या का अल्प द्रव्य शुल्क ग्रहण न करे । यदि वह लोभवश शुल्क लेता है, तो वह संतान बेचने वाला बन जाता है ।

3. **पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।**
**पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ।। 55 ।।**
अतिशय कल्याण चाहने वाले पिता, भाई, पति, देवर आदि को योग्य है कि वे सभी स्त्रियों का मान करें तथा इन्हें भूषणों से सुभूषित करते रहें । जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें ।

4. **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।। 56 ।।**
जिस परिवार में नारियों का सत्कार होता है, वहाँ सभी देवता रमण करते हैं । इसके विपरीत जहाँ इनका सम्मान नहीं होता, वहाँ सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं ।

5. **शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत् कुलम् ।**
**न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ।। 57 ।।**
जिस कुल में नारियां शोकातुर होकर दुःख पाती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है, और जहाँ ये शोकरहित अर्थात् आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता में रहती हैं वह कुल फूलता फलता है ।

6. **जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।**
**तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ।। 58 ।।**
अपमानित हुई नारियां जिन घरों का अनिष्ट चाहती हैं, वे घर भाग्यहतकों के समान नष्ट हो जाते हैं ।

7. **तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।**
**भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु ।। 59 ।।**
इसलिए कल्याण की कामना करने वाले मनुष्यों को उचित है कि सत्कार तथा उत्सवों के अवसरों पर नारियों का वस्त्र, आभूषण तथा भोजन आदि से सदा सत्कार किया करें ।

8. **सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।**
**यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।। 60 ।।**
जिस कुल में पति पत्नी से तथा पत्नी पति से सन्तुष्ट हैं,उस कुल का निश्चित रूप से सदा कल्याण होता है । अप्रसन्न रहें तो कुल में सर्वदा कलह होता है ।

9. **यदि हि स्त्री न रोचेत पुमाँसं न प्रमोदयेत् ।**
**अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ।। 61 ।।**
यदि स्त्री प्रसन्न नहीं रहती तो वह असंतुष्ट पत्नी पति को भी प्रसन्न नहीं कर पाती । इस प्रकार दम्पति की अप्रसन्नता से वंश वृद्धि नहीं होती ।

10. **स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम् ।**
**तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।। 62 ।।**
. नारी के प्रसन्न होने पर ही कुल सुशोभित रहता है और नारी के अप्रसन्न होने पर कुल शोभाहीन हो जाता है ।

11. **पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करा ।**
**कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ।। 68 ।।**
गृहस्थ के लिए पाँच हिंसा के स्थान हैं—चूल्हा, चक्की अथवा कुण्डी,

झाड़ू, उलूखल अथवा मूसल, जल का कलश—इनको उपयोग में लाता हुआ गृहस्थ प्राणिहिंसा से युक्त हो जाता है । क्योंकि इन कार्यों में कीट आदि की हिंसा स्वाभाविक है ।

**12. तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।**
**पंचक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।। 69 ।।**

उपर्युक्त पाँच हिंसक कर्मों के शोधार्थ महर्षियों ने गृहस्थियों के लिए प्रतिदिन पाँच महायज्ञों का विधान किया है ।

**13. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।**
**होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।। 70 ।।**

ये पाँच महायज्ञ हैं—ब्रह्मयज्ञ-विद्या का पढ़ना-पढ़ाना, पितृयज्ञ-माता-पिता का तर्पण (सेवाशुश्रूषा), देवयज्ञ-अग्निहोत्र, भूतयज्ञ-गृहस्थ के आश्रित पशु-पक्षियों को अन्नदान, अतिथियज्ञ-अतिथि, विद्वान् परोपकारी की अन्नादि से सेवा ।

**14. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते ।**
**आदित्याज्जायते वृष्टिर् वृष्टेरन्नं तत प्रजाः ।। 76 ।।**

अग्निहोत्र-अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्यमण्डल तक पहुँच जाती हैं । उसके प्रभाव से आदित्य द्वारा वृष्टि होती है, वर्षा से अन्न होता है और अन्न से प्रजाएँ पुष्ट तथा सुखी रहती हैं ।

**15. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।**
**तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।। 77 ।।**

जैसे सभी प्राणी वायु के आधार से जीवित रहते हैं, वैसे ही सभी आश्रमों ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी का निर्वाह गृहस्थ से होता है ।

**16. यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।**
**गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।। 78 ।।**

क्योंकि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास तीनों आश्रम वाले दैनिक व्यावहारिक ज्ञान व अन्न के द्वारा प्रतिदिन गृहस्थ के द्वारा ही पाले जाते हैं । अतः गृहस्थ सब आश्रम से बड़ा है ।

**17. स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।**
**सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ।। 79 ।।**

इस लोक में नित्य, निर्बाध स्वर्ग सुख के इच्छुक पुरुष को यह गृहस्थ आश्रम यत्नपूर्वक धारण करना चाहिए। यह गृहस्थ आश्रम दुर्बल पुरुषों के धारण-योग्य नहीं है ।

**18. स्वाध्यायेनार्चयेदर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।**
**पितॄन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर् भूतानि बलिकर्मणा ।। 81 ।।**

ब्रह्मयज्ञ–स्वाध्याय करने से उन ग्रंथों के रचयिता ऋषियों की पूजा, देवयज्ञ–विधिके अनुसार होम करने से देवताओं की अर्चना, पितृयज्ञ–श्रद्धापूर्वक पितरों का सत्कार, अतिथियज्ञ–अन्न के द्वारा विद्वानों की पूजा तथा भूतयज्ञ–बलिकर्म के द्वारा पशुपक्षी आदि की पालना करनी चाहिए ।

**19. संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।**
**अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।। 99 ।।**

जब अतिथि घर में प्रविष्ट हो, तो विधिपूर्वक उसका सत्कार करके आसन तथा जल देना उचित है। इसके पश्चात् यथाशक्ति उसे अन्न-प्रदान करना चाहिए ।

**20. तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।**
**एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।। 101 ।।**

तृणासन्न, बैठने के लिए आसन या सोने के लिए स्थान, जल और सत्कारयुक्त चौथी मीठी वाणी ये चारों पदार्थ सज्जनों के घरों में सदा विद्यमान रहते हैं । इन चारों से अतिथिसत्कार सम्पन्न हो जाता है ।

**21. उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।**
**तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ।। 104 ।।**

जो मूर्ख गृहस्थ (स्वयं परिश्रम न करके) दूसरों के घर का अन्न का सेवन करते हैं । (अर्थात् स्वयं कमाते नहीं, परन्तु दूसरे का अन्न खाते हैं) वे मानवता का त्याग करके अन्नदाता के पशु बन जाते हैं ।

**22. अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।**
**काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ।। 105 ।।**
सूर्यास्त होने पर आए हुए अतिथि को गृहस्थ कभी विमुख न करे । चाहे वह भोजन के समय पर अथवा समय के बीत जाने पर भी आया हो, उसे भोजन कराके घर में निवास देना आवश्यक है ।

**23. न वै स्वयं तदश्नीयाद् अतिथिं यन्न भोजयेत् ।**
**धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ।। 106 ।।**
अतिथि को खिलाये बिना कोई भी उत्तम पदार्थ गृहस्थ को स्वयं नहीं खाना चाहिए । अतिथि-सत्कार धन, यश, आयु और सुख का देने वाला होता है ।

**24. सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः ।**
**अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन् ।। 114 ।।**
नववधू, कुमार, रोगी और गर्भवती—इनको अतिथि से पूर्व भी शंका किए बिना भोजन करा देना चाहिए । इसमें छोटे बड़े का विचार नहीं करना चाहिये ।

**25. भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ।**
**भुञ्जीयातां ततः पश्चाद् अवशिष्टं तु दम्पती ।। 116 ।।**
दम्पत्ति को चाहिए कि वे अतिथियों, सम्बन्धियों और भृत्यों के खा चुकने पर ही अवशिष्ट (शेष बचे) अन्न का उपभोग करें ।

**26. अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।**
**यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते ।। 118 ।।**
जो गृहस्थ केवल अपने लिए ही पकाता है और खाता है, वह पाप का उपभोग करता है । शास्त्र में कहा है—यज्ञ शेष अन्न ही सज्जनों का भोजन है । इसके विपरीत बिना यज्ञ को भोजन असतपुरुषों का भोजन है ।

# चौथा अध्याय

## (द्विज, गृहस्थ और आचार)

**1. चतुर्थमायुषो भागम् षित्वाऽऽद्यं गुरौ द्विजः ।**
**द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् । । 1 । ।**

द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि) आयु के चौथाई भाग यानि पहले भाग 25 वर्ष में गुरुकुल में ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरु के समीप बैठ कर विद्या ग्रहण करना और दूसरे भाग में 25 वर्ष से 50 वर्ष तक विवाह करके पत्नी के साथ गृहस्थाश्रम का पालन करे ।

**2. अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।**
**या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि । । 2 । ।**

गृहस्थ आश्रम में रहता हुआ विद्वान् सामान्य अवस्था में ऐसी जीविका को धारण करे जिससे किसी को न दुःख हो अथवा बहुत ही कम दुःख हो । ऐसी जीविका अपना कर ग्रहस्थ का पालन पोषण करें ।

**3. यात्रामात्रप्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।**
**अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचैयम् । । 3 । ।**

जीवन यात्रा को चलाने के लिए शरीर को अधिक कष्ट न देते हुए व क्षति पहुँचाए बिना अपने अच्छे कर्मों से ही विद्वान् को जीवन यापन के लिए धनोपार्जन करना सुख का आधार है, इससे उल्टा असंतोष दुःख का आधार है ।

**4. संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।**
**संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः । । 12 । ।**

सुख की इच्छा करने वाले को संतोष धारण करके संयमपूर्वक रहना चाहिए । सुख का आधार संतोष है और संतोष के विपरीत असंतोष (लोभ) दुःख का कारण है ।

**5. वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।**
**तद्धि कुर्वन यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् । । 14 । ।**

ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त कर्म को आलस्य छोड़ कर नित्य किया करें। उसको अपने सामर्थ्य के अनुसार करते हुए मुक्ति पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं।

6. **इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।**
**अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत्।।16।।**
केवल भोग की कामना से इन्द्रियों के विषयों में नहीं फंसना चाहिए। इन विषयों की अत्यासक्ति को मन द्वारा रोक देना आवश्यक है।

7. **बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।**
**नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्।।19।।**
बुद्धि की वृद्धि करने वाले, अर्थ के सम्पादन करने वाले और हित करने वाले शास्त्रों तथा वेदार्थ को बताने वाले अन्य ग्रन्थों का नित्य स्वाध्याय करना चाहिए।

8. **यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।**
**तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते।।20।।**
व्यक्ति ज्यों-ज्यों शास्त्र का अध्ययन करता है, त्यों-त्यों उसे ज्ञान प्राप्त होता जाता है तथा उसकी रुचि विज्ञान के लिए उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

9. **ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।**
**नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।।21।।**
गृहस्थ ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ इन को अपनी सामर्थ्यानुसार जहां तक हो सके कभी न छोड़े।

10. **अग्निहोत्रं च जुहुयाद् आद्यन्ते द्युनिशोः सदा।**
**दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि।।25।।**
प्रातः और सायं दोनों काल सदा अग्निहोत्र करना चाहिए। इसी प्रकार आधे मास की समाप्ति अर्थात् अमावस्या को तथा पूर्णमास होने पर अर्थात् पूर्णिमा को क्रम से दर्श यज्ञ करना आवश्यक है।

**11. आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।**
**नास्य कश्चिद् वसेद् गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ।। 29 ।।**
किसी भी गृहस्थ के घर में सामर्थ्य के अनुसार अतिथि की जल, कन्दमूल, फलादि भोजन, निवास और शयनादि के स्थान की व्यवस्था व सेवा-सुश्रूषा अवश्य करनी चाहिए । बिना सत्कार किये न रहें ।

**12. पाखण्डिनोविकर्मस्थान्वैडलव्रतिकाञ्छठान् ।**
**हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ।। 30 ।।**
पाखण्डी, अनिष्ट कर्म करने वाले, लोगों के ठगने के लिए विविध वेष धारण करने वाले, अनर्गल बोलने वाले कपटी वेद निन्दक, नास्तिक, ईश्वर वेद और धर्म को न मानने वाले व्यक्ति यदि अतिथि के रूप में आएं, तो उनका वाणीमात्र से भी सत्कार करना उचित नहीं ।

**13. शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।**
**संविभागश्च भूतेभ्यः कर्त्तव्योऽनुपरोधतः ।। 32 ।।**
गृहस्थजन शक्ति के अनुसार उन लोगों को भोजन अवश्य दें जो स्वयं न पका सकते हों, इसके अतिरिक्त आश्रित प्राणियों के लिए भी विघ्न के बिना अन्न का विभाजन कर देना चाहिए। परन्तु परिवार के भरण-पोषण में भी बाधा न पड़े ।

**14. क्लृप्त-केश-नख श्मश्रूर् दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।**
**स्वाध्याये चैव युक्तः स्यात् नित्यमात्महितेषु च ।। 35 ।।**
स्नातक विप्र को शुद्ध और श्वेत वस्त्र पहिनने चाहिए, केश, नख और दाढ़ी को कटवा कर पवित्र रहना चाहिए तथा वेदों के स्वाध्याय से तथा आत्म उन्नति में सदा उसे लगा रहना चाहिए ।

**15. रजसाऽभिप्लुतां नारीं नरस्य हयुपगच्छतः ।**
**प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुर् आयुश्चैव प्रहीयते ।। 41 ।।**
रजस्वला स्त्री से सहवास करने वाले की बुद्धि, तेज, बल, नेत्र दृष्टि और आयु की क्षीणता हो जाती है ।

16. **ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।**
**कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ।। 92 ।।**

ब्राह्ममुहूर्त में जाग पड़ना चाहिए । सभी आवश्यक कार्य करके धर्म, अर्थ व शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करें । कभी अधर्म का आचरण न करें ।

17. **उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।**
**पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् स्वकाले चापरां चिरम् ।। 93 ।।**

प्रातःकाल उठकर आवश्यक कार्य करने के पश्चात् स्नान से पवित्र होकर प्रातःकाल की संध्योपासना को करना चाहिए और इसी प्रकार अपने समय पर सायंकाल की संध्योपासना को करना चाहिए ।

18. **अमावस्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।**
**ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्युतौ स्नातको द्विजः ।। 128 ।।**

जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के 16 दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या और चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचारी रहें अर्थात् ऋतुदान न करें ।

19. **वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ।**
**अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ।। 133 ।।**

शत्रु का, शत्रु के सहायक का, अधार्मिक का, चोर का कभी संग न करें तथा पराई स्त्री का भी कभी सेवन नहीं करना चाहिए ।

20. **न हीदृश्मनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।**
**यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।। 134 ।।**

पराई स्त्री का सेवन जिस तरह आयु का नाश करता है, उस प्रकार आयु का क्षय करने वाला संसार में कोई दूसरा कार्य नहीं ।

**21. नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।**
**आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन् नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।। 137 ।।**

अपनी पूर्वकालीन असफलताओं से कभी भी स्वयं दीन-हीन नहीं समझना चाहिए । अर्थात् अपनी आत्मा का अपमान न करें । लक्ष्मी को दुर्लभ न समझते हुए मृत्यु-पर्यन्त उसकी प्राप्ति की कामना पुरुषार्थ करते हुए करनी चाहिए । पुरुषार्थ से अर्जित धन ही अर्थ होता है ।

**22. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।**
**प्रियं च नानृतं ब्रूयाद एष धर्मः सनातनः ।। 138 ।।**

सत्य ही धर्म है सदा सत्य ही बोलना चाहिए, परन्तु वह सत्य प्रिय होना चाहिए, अप्रिय सत्य बोलना उचित नहीं । वाणी से कभी भी मिथ्या नहीं वर्तना चाहिए, चाहे वह प्रिय भी हो ।

**23. भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत् ।**
**शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचिद् सह ।। 139 ।।**

सदा शुभ बोलना चाहिए और कल्याणकारी ही बोलना चाहिए । किसी के साथ निष्प्रयोजन वैर और झगड़ा करना उचित नहीं । जो दूसरे का हितकारी हो और बुरा भी माने तथापि कहे बिना न रहे ।

**24. हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोधिकान् ।**
**रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ।। 141 ।।**

नीचे लिखे व्यक्तियों को कभी तिरस्कृत नहीं करना चाहिए—जिनके कुछ अंग कम हैं या नष्ट हो गये हैं—काना, बहिरा आदि, जिनके कुछ अंग अधिक हैं—छः अंगुलियों वाला आदि, विद्या न पढ़ सकने वाले—जड़भरत, बड़ी आयु के वृद्ध, रूप और धनहीन तथा जातिहीन ।

**25. वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।**
**तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ।। 147 ।।**

नियत समय पर प्रतिदिन आलस्य रहित होकर वेद का स्वाध्याय करना चाहिए । वेदाभ्यास को परम धर्म कहा है । इसके अतिरिक्त अन्य सब कर्त्तव्य गौण हैं ।

**26. अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।**
**कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् । । 154 । ।**

बड़ों को प्रणाम करना, उन्हें अपना आसन देना, हाथ जोड़ कर उनके पास बैठना तथा उनके चलते हुए उनके पीछे चलना चाहिए ।

**27. आचाराल्लभते ह्यायुर् आचारादीप्सिताः प्रजाः ।**
**आचाराद्ध धनमक्षय्यम् आचारो हन्त्यलक्षणम् । । 156 । ।**

धर्माचरण से दीर्घायु प्राप्त होती है; सदाचार से अपने अनुकूल उत्तम सन्तान बनती है; सदाचार से अक्षय धन मिलता है और धर्माचरण से सभी दोष नष्ट हो जाते हैं ।

**28. दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।**
**दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च । । 157 । ।**

दुराचारी व्यक्ति संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त होता है, सदा दुःखी, रोगी तथा अल्पायु वाला होता है ।

**29. सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।**
**श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति । । 158 । ।**

सभी सौन्दर्यादि गुणों से हीन होता हुआ भी यदि पुरुष सदाचार से युक्त, श्रद्धावाला तथा ईर्ष्यालु नहीं, तो वह सुख से सौ वर्ष तक जीवित रहता है ।

**30. सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।**
**एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयो । । 160 । ।**

सभी कुछ पराधीन दुःखदायी है और जितना स्वाधीन रहना है सब कुछ सुखदायी है । यही सुख-दुःख की पहचान संक्षेप से समझनी चाहिए ।

**31. यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः ।**
**तत् प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् । । 161 । ।**

जिस कर्म को करने से अपने अन्तरात्मा में संतुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव होता है, वह कर्म यत्नपूर्वक करना चाहिए । इसके विपरीत जिससे भय, शंका, लज्जा का अनुभव हो उस कर्म का परित्याग कर देना उचित है ।

**32. अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।**
**हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते । । 170 । ।**

संसार में वह व्यक्ति कभी सुखी नहीं होता, जोकि धार्मिक नहीं, झूठ से एवं अधर्म से धन कमाता है और सदा दूसरे की बुराई में लगा रहता है । ऐसा व्यक्ति पर जन्म में भी सुख को प्राप्त नहीं होता ।

**33. नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।**
**शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति । । 172 । ।**

जैसे गौ आदि की सेवा से तुरन्त दूध नहीं मिल जाता, वैसे ही किया हुआ पाप संसार में शीघ्र फल नहीं दे देता, अपितु शनैःशनैः अधर्म कर्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख का समूल नाश कर देता है ।

**34. यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु ।**
**न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुभवति निष्फलः । । 173 । ।**

किये हुए पाप का फल यदि अधर्म कर्ता की विद्यमानता में उसे नहीं मिला तो उसके पुत्रों के समय में अथवा नाति, पौत्रों के समय में अवश्य मिलता है । अर्थात् कर्ता का किया हुआ पाप कभी निष्फल नहीं होता ।

**35. अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।**
**ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति । । 174 । ।**

कई बार व्यक्ति अधर्म से छल-कपट से दूसरों के पदार्थों को प्राप्त कर

प्रथम बढ़ता है, ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और शत्रुओं पर विजय भी पा लेता है, परन्तु अन्त में वह मूल सहित नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ कटा हुआ वृक्ष शीघ्र नष्ट हो जाता है।

**36. सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा।**
**शिष्यांश्च शिष्याद् धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः।। 175।।**

जो वेदोक्त सत्य, धर्म, श्रेष्ठ आचार और पवित्रता का व्यवहार है उसको सदा ग्रहण करना चाहिए। हाथ, वाणी और पेट को संयम में रखते हुए ही अपने शिष्यों को असत्य के परित्याग, न्याय रूप वेदोक्त धर्मादि की शिक्षा सदा किया करें।

**37. परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।**
**धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च।। 176।।**

जिस धन और कामना की प्राप्ति अधर्म से हो उसका परित्याग कर देना चाहिए। इसके साथ ही वेद विरुद्ध धर्म का भी परित्याग कर देना चाहिए, जिस धर्म का परिणाम दुःखदायक हो तथा जो धर्म लोक में निन्दनीय हो वह धर्म नहीं हो सकता। यदि बहुत सा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध हो तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ दें।

**38. प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्ग तत्र वर्जयेत्।**
**प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।। 186।।**

दान लेने का अधिकार रखते हुए भी दान लेने का लोभ छोड़ देना चाहिए। दान लेने की आसक्ति से उसके ज्ञान का तेज मिट जाता है।

**39. अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।**
**अम्भस्यश्मप्लवेनेव, सह तेनैव मज्जति।। 190।।**

जो ब्राह्मण तपस्वी नहीं और पढ़ा लिखा नहीं, अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेने वाला वह ब्राह्मण अपने दुष्ट कर्मों से इस तरह नष्ट हो जाता

है, जैसे कोई पत्थर की नौका पर सवार होकर नौका के साथ स्वयं भी डूब जाता है ।

**40. न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे ।**
**न वकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् । । 192 । ।**

बिल्ले के समान आचरण वाले कपटी ब्राह्मण को पानी तक भी नहीं देना चाहिए । इसी प्रकार बगुले के समान दम्भी तथा अज्ञानी ब्राह्मण को धर्मज्ञ जन कुछ भी न देवें ।

**41. यथा प्लवेनौपलेन निमज्ज्त्युदके तरन् ।**
**तथा निमज्ज्तोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ । । 194 । ।**

जैसे पत्थर की बनी नौका में बैठ कर जल में तैरने वाला डूब जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी दाता और कुपात्र देने वाला दोनों ही दान देते हुए तथा लेते हुए नीच गति को प्राप्त होते हैं ।

**42. धर्मध्वजी सदालुब्धश् छादमिको लोकदम्भकः ।**
**वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः । । 195 । ।**

बिल्ले के समान आचरण वाले व्यक्ति की यह पहिचान है—वह धर्म की ध्वजा उठाए फिरता है परन्तु भीतर से सदा लोभी, कपटी, लोगों को ठगने वाला, हिंसक और सभी में दोष निकालने वाला होता है ।

**43. अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।**
**शठो मिथ्याविनीतश्च वकव्रतचरो द्विजः । । 196 । ।**

बगुले के समान आचरण वाले पुरुष का यह लक्षण है—वह सदा दृष्टि नीचे रखता है, परन्तु अत्यन्त कठोर, स्वार्थ की सिद्धि में सदा तत्पर, टेढ़ा और ठगने के लिए नम्र बना रहता है । उसका विश्वास एवं सेवा कभी न करें ।

**44. सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।**
**वार्यन्नगोमही वासस् तिलकांचनसर्पिषाम् । । 233 । ।**

संसार में सभी प्रकार के जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घी आदि के दानों की अपेक्षा वेदविद्या का दान सर्वश्रेष्ठ है ।

**45. धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।**
**परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् । । 238 । ।**

किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाते हुए, परलोक में अच्छा बनने को सहायता के लिए शनैः शनै धर्म का संचय करना चाहिए । जैसे दीमक शनैः शनैः थोड़ी थोड़ी मिट्टी उठाकर अन्ततः मिट्टी के ढेर को बना लेती है ।

**46. नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।**
**न पुत्रदारा न ज्ञातिर् धर्मस्तिष्ठिति केवलः । । 239 । ।**

परलोक में सहायता के लिए न पिता, न माता, न स्त्री, न पुत्र और न ही बन्धुगण हो सकते हैं, केवल धर्म ही सहायता के लिए साथ रहता है ।

**47. एकः प्रजायते जन्तुर् एक एव प्रलीयते ।**
**एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतम् एक एव च दुष्कृतम् । । 240 । ।**

प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है, अकेला ही पुण्य का और अकेला ही पाप का उपभोग करता है, अर्थात् उत्पत्ति, मृत्यु और पाप-पुण्य के भोगने में कोई दूसरा उसका सहायक नहीं हो सकता ।

**48. तस्माद् धर्म सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।**
**धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् । । 242 । ।**

इसलिए अपने साहाय के लिए शनैः शनैः धर्म का संचय करना चाहिए । धर्म की सहायता से ही व्यक्ति घने दुःख सागर को पार कर लेता है ।

**49. उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन् ।**
**ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् । । 245 । ।**

विद्वान् ब्राह्मण यदि कुत्सित पुरुषों का संग छोड़ कर श्रेष्ठ पुरुषों की

संगत करता है, तो वह श्रेष्ठता को प्राप्त होता है, परन्तु यदि इसके विपरीत (कुत्सित का संग करता है और श्रेष्ठों का संग नहीं करता) आचरण करता है, तो शूद्रता को प्राप्त हो जाता है ।

**50. दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।**
**अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत् स्वर्गं तथाव्रतः ।। 246 ।।**

कार्य को दृढता से सम्पन्न करने वाला, सरल स्वभाव, संयमी, दुष्टों से मेल-जोल न रखने वाला, अहिंसक पुरुष, संयम और दान से स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त होता है ।

**51. योऽन्यथा सन्तमात्मानम् अन्यथा सत्सु भाषते ।**
**स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ।। 255 ।।**

जो जैसा है यदि उसके विपरीत अपने को प्रकट करता है तो वह संसार में सबसे बड़ा पापी, चोर और आत्मघाती है, क्योंकि वह अपनी आत्मा का हनन करने वाला चोर है ।

**52. वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।**
**तांस्तु यः स्तेनयेद् वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ।। 256 ।।**

सभी शब्द वाणी में ही स्थित हैं और वाणी से ही निकलते हैं, अतः वाणी ही उन सब का कारण है । जो उस वाणी के द्वारा चोरी करता है, अर्थात् झूठ बोलता है, वह सभी प्रकार की चोरी आदि पापों को करने वाला है ।

**53. एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।**
**एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधि गच्छति ।। 258 ।।**

प्रतिदिन एकान्त में अकेले ही अपनी आत्मा में अपने कल्याण की बातों का चिन्तन करना चाहिए । जो (व्यक्ति) अकेला (इस प्रकार) चिन्तन करता है, वह परम पद को पाता है ।

# पाँचवां अध्याय

## (भक्ष्याऽभक्ष्य विचार)

1. **दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्धं च दधिसंभवम् ।**
**यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः । । 10 । ।**
खट्टे पदार्थों में दही तथा दही से बने पदार्थ छाछ, मक्खन आदि खाने के योग्य होते हैं । इनके अतिरिक्त तमोगुण से रहित शुभ पुष्प, मूल और फलों से जो भक्ष्य पदार्थ बनाये जाते हैं, वे भी खाने के योग्य होते हैं ।

2. **यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भोज्यं भोज्यमगर्हितम् ।**
**यत्पर्युषितमप्याद्यं हविः शेषं च यद् भवेत् । । 24 । ।**
बासी पदार्थों में से जो भोज्य घृतादि स्नेह से संयुक्त हैं और निन्दनीय नहीं, वे भी खा लेने उचित हैं, और हवि से बचा पदार्थ भी खाने योग्य होता है ।

3. **योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।**
**स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते । । 45 । ।**
जो व्यक्ति अपने सुख की इच्छा से निरपराध न मारने योग्य जीवों को मारता है वह जीवित अवस्था में और मरने के पश्चात् सुखी नहीं होता ।

4. **यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।**
**स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते । । 46 । ।**
जो व्यक्ति प्राणियों के हिंसा तथा बन्धन-जन्य पीड़ाओं को करने की कभी इच्छा नहीं करता । सबका भला चाहने वाला है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है । विपरीत आचरण वाला मर कर भी सुख को प्राप्त नहीं करता ।

5. **यद् ध्यायति यत् कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ।**
**तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन । । 47 । ।**

जो व्यक्ति किसी की हिंसा नहीं करता, वह जिस पदार्थ का ध्यान करता है, उसे सहज ही पा लेता है और जो कार्य वह करता है उसका वह कार्य सफल हो जाता है ।

6. **नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।**
**न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस् तस्मान्मांसं विवर्जयेत् । । 48 । ।**
प्राणियों की हिंसा के बिना मांस उपलब्ध नहीं होता; प्राणियों का वध पुण्य नहीं अपितु पाप है । अतः मांस को सर्वथा त्याग दें ।

7. **अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।**
**संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः । । 51 । ।**
निम्नलिखित आठों व्यक्ति घातक हैं– (1) मारने की अनुमति देने वाला, (2) मरे हुए के अंगों को काटने वाला, (3) मारने वाला, (4) खरीदने तथा (5) बेचने वाला, (6) पकाने वाला, (7) परोसने वाला तथा (8) खाने वाला । ये सब हत्यारे और पापी हैं ।

8. **ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ।**
**वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् । । 105 । ।**
नीचे लिखे पदार्थ व्यक्तियों की शुद्धि के लिए हैं – ज्ञान, तप, अग्नि, अच्छा आहार, मिट्टी, मन, जल, अनुलेप, वायु, कर्म, सूर्य और काल ।

9. **सर्वेषामेव शौचानाम् अर्थशौचं परं स्मृतम् ।**
**योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर् न मृद्वारि शचिः शुचिः । । 106 । ।**
सभी प्रकार की पवित्रताओं में से धन-सम्बन्धी पवित्रता अधिक कही है । जे धन के व्यवहार में पवित्र है, वही वास्तव में पवित्र है । मिट्टी और जल के द्वारा पवित्रता वास्तविक पवित्रता नहीं ।

10. **क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।**
**प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः । । 107 । ।**

विद्वान् क्षमा से, दुष्ट कर्मचारी सत्संग और विद्यादि शुभ गुणों के दान से, गुप्त पाप करने वाले विचार के त्याग से और वेद के विद्वान् तप से शुद्ध होते हैं ।

**11. अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।**
**विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।। 109 ।।**

जल से शरीर के बाह्य अंग, सत्य से मन, विद्या और तप से अन्तःकरण तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है । जल मृतकादि से नहीं ।

**12. संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।**
**गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पंचभिः ।। 124 ।।**

भूमि की शुद्धि पाँच प्रकार से होती है—बुहारने से, लेपन से, धोने और कुरेदने से, गौओं के वहाँ बाधने से ।

**13. सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।**
**सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।। 150 ।।**

नारी को सदा प्रसन्न रहना चाहिए और घर के कामों में निपुण होना व शुद्धि रखनी चाहिए। उसे भोजन आदि पदार्थों को स्वच्छ रखना चाहिए तथा मितव्ययी होना चाहिए ।

**14. मंगलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापते ।**
**प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणाम् ।। 152 ।।**

विवाहों में जो स्वस्तिपाठ और प्रजापति यज्ञ किया जाता है वह इनके कल्याण की भावना से ही किया जाता है । विवाह में स्त्रियों को पति के लिए सौंप देना इन पर पति के अधिकार का कारण है अर्थात् जो विवाह संस्कार पूर्वक स्त्री को यति के लिए दिया जाता है इस दान के पश्चात् ही उन पर पति का अधिकार होता है, उससे पूर्व नहीं ।

# छठा अध्याय

## (वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम)

1. **एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः ।**
**वने वसेत्तु नियतो यथावद् विजितेन्द्रियः ।। 1 ।।**
ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन करके विधि के अनुसार बना हुआ स्नातक विद्वान् गृहस्थाश्रम का उपभोग करके इन्द्रियों को वश में रखता हुआ संयमी होकर वानप्रस्थ-आश्रम में प्रविष्ट हो ।

2. **गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।**
**अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।। 2 ।।**
जब गृहस्थ अपने शरीर पर झुर्रियाँ तथा श्वेत बाल देखे तथा उसके पुत्र का पुत्र हो जाए तो उसे गृहस्थ छोड़कर वन में निवास-ग्रहण करना चाहिए ।

3. **संत्यज्य गाम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।**
**पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा ।। 3 ।।**
नगर में सम्भव भोजन तथा वस्त्र का परित्याग करके अपनी पत्नी को पुत्रों के पास रख कर अथवा पत्नी को भी साथ ही लेकर वानप्रस्थ को वन की ओर प्रस्थान करना चाहिए ।

4. **मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।**
**एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद् विधिपूर्वकम् ।। 5 ।।**
वानप्रस्थ व्यक्ति को मुनियों द्वारा खाये जाने वाले अनेक प्रकार के अन्नों से, शाक, मूल तथा फलों से विधि के अनुसार पाँच महायज्ञों को करना चाहिए ।

5. **यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद् बलिं भिक्षां च शक्तितः ।**
**अम्मूलफलभिक्षाभिर् अर्चयेदाश्रमागतान् ।। 7 ।।**
वानप्रस्थ जो कुछ स्वयं खाता है, उसी से ही शक्ति के अनुसार बलि

तथा भिक्षा देनी चाहिए। आश्रम में आये हुये अभ्यागतों का जल, कन्द मूल, फल और भिक्षा से सत्कार करना ही उचित है।

6. **स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।**
**दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।।8।।**

जंगल में रहता हुआ वानप्रस्थ सदा स्वाध्याय में लगा रहे, द्वन्द्वों को सहन करता हुआ, सबसे मित्रभाव रखकर ध्यानमग्न रहे। उसे किसी से दान लेना नहीं चाहिए। जहाँ तक हो सके उसे दान का दाता तथा प्राणिवर्ग पर दयालु होना आवश्यक है।

7. **वैतानिकं च जुहुयाद्, अग्निहोत्रं यथाविधि।**
**दर्शमस्कन्दयन्पर्व, पौर्णमासं च योगतः।।9।।**

वानप्रस्थ को समय पर आने वाले दर्श-पौर्णमास यज्ञ (अमावस्या की और पूर्णिमा की इष्टि) को सम्पन्न करते हुए अग्नि को आह्वनीय कुंड में रखकर विधि के अनुसार प्रतिदिन अग्निहोत्र करना चाहिए।

8. **अधीत्य विधि वद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।**
**इष्ट्या व शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत।।36।।**

विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम से सब वेदों को पढ़कर और गृहस्थी होकर, धर्म से पुत्रोत्पत्ति करके वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मन को लगावें।

9. **नाभिनन्दत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।**
**कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा।।45।।**

जीवन और मरण को उपेक्षा की दृष्टि से देखे। जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा का ध्यान रखता है। इसी प्रकार संन्यासी को भी काल भगवान् की प्रतीक्षा में रहना उचित है।

10. **दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।**
**सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्।।46।।**

संन्यासी को अपने पग आँखों से देखकर ही रखने चाहिए, वस्त्र से छान कर जल पीना चाहिए, सत्य से पवित्र वाणी को बोलना चाहिए तथा

मन से अच्छा बुरा विचार कर काम करना चाहिए ।

**11. अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।**
**न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् । । 47 । ।**

संन्यासी को दूसरों के अप्रिय कथनों को सहन कर लेना तथा किसी का अपमान नहीं करना चाहिए; इस अस्थिर देह को धारण करते हुए उसे किसी से वैर-विरोध नहीं करना चाहिए ।

**12. क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येद् आक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।**
**सप्तद्वारावकीर्णां व न वाचमनृतां वदेत् । । 48 । ।**

जो संन्यासी पर क्रुद्ध हो रहा हो, उस पर भी संन्यासी को क्रोध नहीं करना चाहिए । यदि कोई उसे अपशब्द कहे, तो उसके प्रति भी भले वाणी कहनी चाहिए । पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि में व्याप्त विषयों के सम्बन्ध में झूठा व्यवहार नहीं करना चाहिए ।

**13. अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।**
**आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह । । 49 । ।**

संन्यासी को स्वयं में रमण करते हुए आत्मनिष्ठा में स्थित सर्वथा अपेक्षारहित, मांस, मद्य आदि का त्यागी होना चाहिए। उसे कामनाहीन तथा विषयों की अभिलाषा से रहित होना चाहिए । सुख के अभिलाषी उस संन्यासी को सदा अपने पर ही भरोसा करना चाहिए ।

**14. क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।**
**विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् । । 52 । ।**

केश, नाखून, दाढ़ी, मूँछ कटवा कर, भिक्षा-पात्र, दण्ड तथा कुसुंभ के रंगे हुए वस्त्रों को धारण, कमण्डलु लिए किसी भी प्राणी को पीड़ा न देते हुए—संन्यासी को सदा भ्रमण करना चाहिए ।

**15. एककालं चरेद् भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।**
**भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर् विषयेष्वपि सज्जति । । 55 । ।**

संन्यासी दिन में एक समय ही भिक्षा करे, भिक्षा के बाहुल्य में उसे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। भिक्षान्न में अनुरक्ति रखता हुआ

संन्यासी विषयों में भी अनुरक्त हो जाता है। भिक्षा के लालच में या स्वाद में मन लगाने वाला संन्यासी विषयों में भी फंस जाता है।

**16. अलाभे न विषादी स्याल् लाभे चैव न हर्षयेत्।**
**प्राणयात्रिकमात्रः स्यान् मात्रासंगाद् विनिर्गतः।।57।।**

भिक्षा के लाभ न होने पर भी संन्यासी को दुःखी तथा लाभ होने पर प्रसन्न नहीं होना चाहिए। केवल प्राण-स्थिति के लिए भोजन की अभिलाषा करनी चाहिए। जो उसके पासवस्त्र दण्ड आदि हैं, उनमें भी उसे आसक्त होना नहीं चाहिए।

**17. अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।**
**ह्रियमाणानि विषयैर् इन्द्रियाणि निवर्तयेत्।।59।।**

संन्यासी विषयों की ओर आकृष्ट हो रही इन्द्रियों को अल्पाहार से तथा एकान्त में बैठकर चिन्तन करने से वश में करे।

**18. इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।**
**अहिंसया च भूतानाम् अमृतत्वाय कल्पते।।60।।**

इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त कर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे।

**19. अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः।**
**निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये।।61।।**

बुरे कर्मों से उत्पन्न होने वाली व्यक्तियों की अवस्था को, दुःख में ग्रस्त लोगों की पीड़ाओं को सदा अपने ध्यान में रखना चाहिए और विचार कर मुक्ति के प्रयास करने चाहिए।

**20. विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाऽप्रियैः।**
**जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम्।।62।।**

प्रियों का वियोग, दुष्टों का संयोग, वृद्धावस्था के कारण होने वाले तिरस्कार तथा रोगों की पीड़ा को भी सदा अपने ध्यान में रखना चाहिए।

**युनजानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।**
**अग्नेर्ज्योतिर्निचाप्य पृथिव्या अध्याभरतः । । ऋ. 1/4/2**

योग करने वाले मनुष्य तत्त्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिये जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से युक्त कर लेता है । फिर वो परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत् धारणा करते हैं, पृथिवी के बीच में योगी का यही लक्षण है ।

**21. दूषितोऽपि चरेद् धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।**
**समः सर्वेषु भूतेषु न लिंग धर्मकारणम् । । 66 । ।**

जिस किसी भी आश्रम में अवस्थित व्यक्ति को सब प्राणियों पर समता का भाव रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिए । बेशक वह उस आश्रम के बाहर के चिह्नों से रहित भी हो, क्योंकि आश्रमों के बाहर के चिह्न धार्मिक होने के लिए प्रमाण नहीं हैं । सारे संसार के लिए सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है ।

**22. फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।**
**न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति । । 67 । ।**

यद्यपि कतक वृक्ष अर्थात् निर्मली का फल जल को शुद्ध करने वाला है । परन्तु केवल नाम लेने मात्र से दूषित जल शुद्ध नहीं होता है । अर्थात् उसका फल पीस कर जल में डालना पड़ता है ।

**23. प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।**
**व्याहृतिप्रणवैर्युक्ताः विज्ञेयं परमं तपः । । 70 । ।**

संन्यासी के लिए ओंकार और भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्—इन सात व्याहृतियों से रेचक, पूरक तथा कुम्भकात्मक प्राणायाम को तीन बार करने का विधान किया गया है । यही संन्यासी का परम तप है । तीन से कम प्राणायम कभी न करें ।

**24. दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।**
**तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् । । 71 । ।**

सोना, चांदी, ताम्बा आदि धातुओं की मैल जैसे अग्नि में तपाने पर नष्ट हो जाती है, ठीक इसी प्रकार (प्राणायाम के द्वारा) प्राणों को वश में करने से इन्द्रियों के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं ।

**25. उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।**
**ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ।। 73 ।।**
बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में अशुद्ध आत्माओं से देखने योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यानयोग से संन्यासी देखा करे ।

**26. सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।**
**दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।। 74 ।।**
सम्यक् ज्ञान से युक्त संन्यासी कर्मबन्धन में नहीं बंधते । परन्तु इस सम्यक् ज्ञान से हीन पुरुष (कर्मबन्धन में पड़े हुए) संसार के चक्र में घूमते रहते हैं । जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसा रहता है ।

**27. अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर् वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।**
**तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ।। 75 ।।**
सम्यक् ज्ञान से व्यक्ति अहिंसा से, विषयों में इन्द्रियों की अनासक्ति से, वैदिक कर्मों से और उग्र तप के आचरण से उस परम पद मोक्ष को संन्यासी ही पा सकते हैं ।

**28. यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।**
**तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ।। 80 ।।**
जब अपनी मन की भावनाओं से ही सभी प्राणियों के लिए आसक्ति का परित्याग कर देता है, तो वह इस लोक में तथा परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होकर निरन्तर सुख को प्राप्त होता है ।

**29. अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्छनैः शनैः ।**
**सर्वद्वन्दविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ।। 81 ।।**
इन ऊपर श्लोकों में कही हुई विधि के अनुसार जो शनैः शनै सभी प्रकार की आसक्तियों को छोड़ देता है, वह मान-अपमान तथा शीतोष्णादि द्वंद्वों से मुक्त हुआ परब्रह्म में स्थिर हो जाता है ।

**30. ध्यानिकं सर्वमेवैतद् यदेतभिशब्दितम् ।**
**न ह्यनध्यात्मवित् कश्चिद् क्रियाफलमुपाश्नुते ।। 82 ।।**

यह जो ममत्व त्याग कहा है वह सम्पूर्ण मन से ही होता है, क्योंकि मन से त्याग न करने वाला कोई भी उस क्रिया के फल को प्राप्त नहीं होता ।

**31. सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।**
**गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ।। 89 ।।**

वेद तथा स्मृति के विधान के अनुसार इन सभी आश्रमों में से गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि यह गृहस्थाश्रम इन तीनों आश्रमों की पालना करता है ।

**32. यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।**
**तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ।। 90 ।।**

जैसे सभी नदी और नाले सागर में पहुँच कर स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार तीनों आश्रमों में रहने वाले व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के सहारे ही अपनी सत्ता को स्थिर रखते हैं ।

**33. चतुर्भिरपि चैवेतैर् नित्याश्रमिभिद्विजैः ।**
**दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ।। 91 ।।**

इन चारों आश्रमों में रहने वाले व्यक्तियों को दस लक्षणों वाला धर्म यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ।

**34. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**
**धीर्विद्याः सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् । 92 ।।**

(1) धैर्य, (2) क्षमा, (3) मन का निग्रह, (4) चोरी का त्याग, (5) पवित्रता, (6) इन्द्रियों को वश में करना, (7) तत्त्वज्ञान सम्बन्धिनी बुद्धि, (8) आत्मज्ञान सम्बन्धी विद्या, (9) सत्य और (10) क्रोध का अभाव । अधर्म को त्याग कर सदा धर्म में वर्तना चाहिए । धर्म के इन दस लक्षणों का जो अध्ययन मनन करते हैं, वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ।

# सातवाँ अध्याय

## (राजधर्म)

**1. राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।**
**संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ।।1।।**

इस अध्याय में राजधर्म का वर्णन किया जायेगा—राजा का आचार जैसा होना चाहिए, उसकी सत्ता का आविर्भाव जैसे हुआ तथा जैसे राजा को परम सिद्धि प्राप्त होती है, उसको सब प्रकार से कहते हैं ।

**2. ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।**
**सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ।।2।।**

जैसे परम् विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा ही विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय के योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत करे ।

**3. आरजके हि लोकेस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।**
**रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः ।।3।।**

अराजकता के भय हेतु जगत् में प्रभु ने इस लोक की रक्षा के लिए राज पद को बनाया । अर्थात् राजा बनाने की प्रेरणा मानवों के मस्तिष्क में दी है ।

**4. इन्द्रानिलयमार्काणाम् अग्नेश्च वरुणस्य च ।**
**चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निहृत्य शाश्वतीः ।।4।।**

इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर आदि दिव्य शक्तियों वाला राजा होवे, जो प्रजा की यथावत् रक्षा करने में सक्षम हो । अगिन के समान दुष्टों को भस्म करने वाला राजा हो ।

**5. यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।**
**तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ।।5।।**

राजा का निर्माण देवताओं की सारभूत गुणारूपी शक्तियों से हुआ है, अतः राज्य शक्ति अपने तेज से सभी पर शासन करती है । राजा अपनी शक्तियों से प्रजा को वशीभूत रखता है ।

6. **तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।**
**ब्रह्मतेजोमयं दण्डम् असृजत् पूर्वमीश्वरः ।। 14 ।।**
राजा शासन के कार्य की सिद्धि के लिए भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में ही अपने पुत्ररूप, सभी प्राणियों की रक्षा करने वाले, ब्रह्म तेजोमय अर्थात् शिक्षाप्रद भाव से युक्त धर्मरूप दण्ड देने की व्यवस्था का विधान किया, ताकि कानून का उल्लंघन कोई न करे ।

7. **तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।**
**यथार्हतः संप्रणयेन् नरेष्वन्यायवर्तिषु ।। 16 ।।**
राजा को उस दण्ड का प्रयोग देश, काल, शक्ति और विद्या की दृष्टि से अपराध के अनुसार ठीक-ठीक निरीक्षण करके अन्यायकारियों पर करना चाहिए । क्योंकि दण्ड का तात्पर्य सुधार है बदला लेना नहीं ।

8. **दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।**
**दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।। 18 ।।**
वास्तव में दण्ड विधान ही सभी प्रजाओं को अनुशासन में रखता है, दण्ड सभी की रक्षा करता है, सोई हुई प्रजा में दण्ड जागता रहता है । दण्ड के भय से ही अपराधी भयभीत होते हैं । इसलिए बुद्धिमान् दण्ड को ही धर्म कहते हैं ।

9. **दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः ।**
**सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ।। 24 ।।**
बिना दण्ड के सर्व वर्ण दूषित और सब मर्यादाएं छिन्न-भिन्न हो जायें, दण्ड के यथावत न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जाए ।

10. **तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।**
**समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ।। 26 ।।**
विद्वान् लोग दण्ड प्रवर्तक राजा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—उसे सत्यवादी समीक्ष्यकारी (विचारपूर्वक कार्य करने वाला) धर्म, काम और अर्थ का वेत्ता तथा बुद्धिमान् होना चाहिए ।

11. **तं राजा प्रणयन् सयम्क् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ।**
**कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ।। 27 ।।**

जो राजा दण्ड का ठीक प्रयोग करने वाला है वह धर्म, अर्थ और काम से भली प्रकार बढ़ता है, परन्तु इसके विपरीत, स्वार्थी, क्षुद्र और नीच बुद्धि, उपयुक्त व्यवहार का न करने वाला राजा उसी दण्ड से ही मारा जाता है।

12. **सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।**
**न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च।।30।।**
जो शासक सहायहीन, मूढ, लोभी, अविवेकी तथा विषयों में आसक्त है, वह दण्ड कभी न्यायपूर्वक नहीं चल सकता।

13. **शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा।**
**प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसायेन धीमता।।31।।**
इसके विपरीत जो पवित्र, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, शास्त्र के अनुसार चलने हारा, बुद्धिमान् तथा सहायकों से युक्त है, वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है।

14. **स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।**
**वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता।।35।।**
उन सभी वर्णों की, जोकि अपने-अपने कर्त्तव्य में रत हैं तथा उन सभी आश्रमों की—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम की रक्षा करने के लिए राजा को बनाया गया है। समाज को धर्म अर्थात् नियम-व्यवस्था में चलाने के लिये ही राजा और राज्य की सृष्टि होती है।

15. **ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः।**
**त्रेविद्यवृद्धान् विदुषस् तिष्ठेत्तेषां च शासने।।37।।**
प्रातः काल उठ कर राजा को ऋक्, साम, यजु, त्रयोविद्या को जानने वाले, विद्वान् वृद्धों के पास जाना चाहिए और उनके कथनानुसार आचरण करना चाहिए। राजा को मर्यादित जीवन जीना चाहिये।

16. **तेभ्योऽधिगच्छेद् विनयं विनीतात्मापि नित्यशः।**
**विनीतात्मा हि नृपतिर् न विनश्यति कर्हिचित्।।39।।**
विनय युक्त होते हुए भी राजा को उपर्युक्त ज्ञान-वृद्धों से नित्य मर्यादा

की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। शिक्षित राजा कभी भी विनाश को प्राप्त नहीं होता।

**17. इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम्।**
**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।44।।**

राजा को निशिदिन इन्द्रियों के विजय में यत्न करना चाहिए। इन्द्रियों पर विजय पाने वाला राजा ही प्रजा को अपने वश में रख सकता है। राजा का जितेन्द्रिय होना अति आवश्यक है।

**18. दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।**
**व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।45।।**

राजा को काम से उत्पन्न होने वाले 10 और क्रोध से उत्पन्न होने वाले 8 व्यसनों का परित्याग यत्नपूर्वक करना चाहिए। इन व्यसनों का परिणाम अत्यन्त दुःख देने वाला है। उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवें।

**19. कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।**
**वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु।।46।।**

काम से उत्पन्न होने वाले 10 व्यसनों में अनुरक्त राजा धर्म तथा अर्थ से हीन हो जाता है और क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसनों में अनुरक्त हुआ अपना जीवन ही खो बैठता है। अतः प्रयत्नपूर्वक व्यसनों को छोड़ देना चाहिए।

**20. मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।**
**तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।।47।।**

काम के 10 व्यसन आखेट, जुआ, दिन में सोना, दूसरों के दोषों का कथन अथवा श्रवण, स्त्री विहार, सुरा, नाचना, गाना, बजाना और निरर्थक घूमना। इनका प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। ये कामोत्पन्न के व्यसन हैं।

**21. पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।**
**वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।।48।।**

क्रोध से उत्पन्न होने वाले 8 व्यसन चुगली, बलात्कार, अनुचित कर्मों का करना, द्रोह, ईर्ष्या, निन्दा, धन का अपहरण, कटुवचन, कठोरता। ये अधर्म के कर्म हैं, इनका प्रयत्न से त्याग करें।

22. **द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।**
**तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ । । 49 । ।**
जिसको सब लोग कामज और क्रोधज अठारह दोषों के मूल जानते हैं कि जिन से ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न पूर्वक छोड़ देना चाहिये ।

23. **व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।**
**व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यवसनी मृतः । । 53 । ।**
व्यसन और मृत्यु में व्यसनों को अधिक दुःख देने वाला कहा है । व्यसन में ग्रस्त व्यक्ति नीचे ही नीचे गिरता जाता है । परन्तु व्यसनों से पृथक हुआ मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो कर भी सुख को पा लेता है ।

24. **मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल् लब्धलक्षान् कुलोद्भवान् ।**
**सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् । । 54 । ।**
स्वदेश में उत्पन्न हुए सचिव का कार्य करने वाले, शास्त्रों के ज्ञाता, शूर, लक्ष्य-प्राप्ति में सुपरीक्षित और कुलीन सात अथवा आठ उत्तम चतुर सचिव परीक्षा करके राजा को नियत करने चाहिएं ।

25. **अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।**
**विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् । । 55 । ।**
जो साधारण सुगम कार्य है, उसको भी अकेला व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता । परन्तु जो महान् समुन्नत राज्य है । उसको राजा मन्त्रियों की सहायता के बिना कैसे चला सकता है । इसलिये एक को राजा बनाना और उसी की बुद्धि पर सारे काम का बोझ रखना बुद्धिमत्ता नहीं है ।

26. **तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ।**
**स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च । । 56 । ।**
उन मन्त्रियों से निम्नलिखित विषयों पर राजा को विचार करना चाहिए—सामान्य रूप से सन्धि और युद्ध, स्थान—दण्ड के साधनों की पुष्टि, कोष की प्राप्ति तथा व्यय, पुर और राष्ट्र, के पशु आदि की क्षमता, उदय-धान्य आदि पदार्थों का उत्पादन, गुप्ति-रक्षा और प्राप्त पदार्थ का ठीक-ठीक उपयोग । जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना ।

**27. तेषां स्वं स्वमभिप्रायम् उपलभ्य पृथक्-पृथक् ।**
**समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ।। 57 ।।**
उन सभासदों का पृथक् पृथक् अपना-अपना विचार और अभिप्राय सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना ।

**28. दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।**
**इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचि दक्षं कुलोद्गतमू ।। 63 ।।**
राजा को सब शास्त्रों के अध्ययन में निपुण, इशारा, आकृति और चेष्टा से दिल की बात को जान लेने वाला, पवित्र, चतुर और कुलीन भविष्य की बात हो जानने वाला राजदूत नियत करना चाहिए ।

**29. अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ।**
**वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ।। 64 ।।**
राज्य भक्त, पवित्र, चतुर, तीव्र स्मरणशक्ति वाला, देश और काल को जानने वाला, सुन्दर बलिष्ट शरीर से बल युक्त, निर्भय और बोलने में चतुर राजदूत प्रशंसा के योग्य होता है ।

**30. दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।**
**दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः ।। 66 ।।**
दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़-तोड़ देवे । दूत यह कर्म करे जिससे शत्रुओं के लोगों में भी फूट पड़े ।

**31. बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।**
**तथा प्रयलमातिष्ठेद् यथाऽऽत्मानं न पीडियेतू ।। 68 ।।**
सभापति, सब सभासद् और राजदूत का कर्त्तव्य है कि अपने राज्य के प्रति दूसरे राज्य के अभिप्राय को ठीक-ठीक जान कर ऐसा यत्न करे कि जिससे स्वराष्ट्र की हानि न हो ।

**32. न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।**
**न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ।। 91 ।।**
शत्रु की जब नीचे लिखी हालत हो, तो उसे मारना नहीं चाहिए—रथ टूटने पर नीचे खड़े हुए, दोनों हाथ जोड़े हुए, खुले बालों वाले, युद्ध का

परित्याग कर बैठे हुए, मैं आपका हूँ ऐसा कहने वाले तथा नपुंसक को योद्धा कभी न मारे। परन्तु उनको पकड़ कर बन्दीगृह में रख दें।

**33. न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।**
**नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्।।92।।**

सोए हुए, खुले हुए कवच वाले, नंगे तथा शस्त्रहीन, जो युद्ध नहीं कर रहे, परन्तु देख रहे हैं, जो दूसरे के साथ आए हैं—इनका वध नहीं करना चाहिए।

**34. नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नाति परिक्षतम्।**
**न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्।।93।।**

टूटे हुए अस्त्र-शस्त्र वाले, कराहते तथा अत्यन्त जख्मी, डरे हुए, युद्ध भूमि से लौटे हुए को सच्चे क्षत्रियों का धर्म स्मरण करके नहीं मारना चाहिए। उनको कारागार में रखें।

**35. अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत् प्रयलतः।**
**रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्।।99।।**

राजा को अप्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त करने की इच्छा, प्राप्त हुए की यत्न से रक्षा, रक्षा किए गये की वृद्धि और बड़े हुए ऐश्वर्य को उचित कार्यों में लगाना चाहिए।

**36. एतच्चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थप्रयोजनम्।**
**अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक् कुर्यादतन्द्रितः।।100।।**

उपर्युक्त चार प्रकार के राज्य के पुरुषार्थ मूलक प्रयोजन को जानना चाहिए, और प्रमादहीन होकर नित्य ही भली प्रकार उन चार कर्मों को उद्देश्यपूर्ति के लिए करना चाहिए।

**37. नित्यमुद्यतदण्डः स्यात् नित्यं विवृतपौरुषः।**
**नित्यं संवृतसंवार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः।।102।।**

राजा सदैव न्यायानुसार दण्ड का प्रयोग करने में तत्पर रहे, अपनी शक्ति को सदा तैयार रखे, अपने पौरुष को सदा प्रकट रखना चाहिए।

अपने राज्य के सब रहस्यों को सदा छिपाये रखना तथा शत्रु के दोषों को सदा ध्यान में रखना चाहिए ।

**38. अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया ।**
**बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ।। 104 ।।**

राजा को कपटरहित व्यवहार करना चाहिए न कि कपटयुक्त । शत्रु से अपनी रक्षा करते हुए प्रयोग में लाई हुई माया को सदा जानना चाहिए ।

**39. नास्य छिद्रं परो विद्याद् विद्याच्छिद्रं परस्य तु ।**
**गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद् विवरमात्मनः ।। 105 ।।**

कभी किसी के साथ छल से न वर्ते, निष्कपट होकर सबसे वर्ताव रखें । नित्य प्रति अपनी रक्षा करके शत्रु के किये हुए छल को जानकर निवृत्त करे ।

**40. यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।**
**तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ।। 110 ।।**

जैसे खेतीहर खेत में से निरर्थक उगे हुए पौधों को उखाड़ता है और धान्य की रक्षा करता है, इसी प्रकार राजा को अपने राष्ट्र की रक्षा चोरों आदि से करनी चाहिए और राज्य-द्रोहियों का नाश करना चाहिए ।

**41. मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।**
**सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज् जीविताच्च सबान्धवः ।। 111 ।।**

जो राजा मोह से अविचार से अपने राज को दुर्बल करता है वह राज और अपने बन्धु सहित जीवन से पूर्व ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ।

**42. राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।**
**सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ।। 113 ।।**

इसलिए राजा और राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिए ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत सिद्ध हो । जो राजा राजपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसका सुख सदा बढ़ता है ।

**43. द्वयोस्त्र्याणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।**
**तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ।। 114 ।।**
दो गाँव, तीन गाँव, पाँच गाँव अथवा सौ गाँव (जनसंख्या का ध्यान करके) के मध्य एक सुरक्षा का स्थान अथवा राज कार्यालय बनाना चाहिए। इस क्रम से राष्ट्र के कार्यों की रक्षा करनी चाहिए एवं राष्ट्र को सुव्यवस्थित, सुरक्षित एवं नियंत्रण में रखें।

**44. ग्रामस्याधिपति कुर्याद् दशग्रामपति तथा ।**
**विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ।। 115 ।।**
प्रत्येक गाँव का 1 मुखिया बनाना चाहिए। 10 गाँव का (उस से बड़ा) एक और मुखिया, 20 गाँव का (उससे बड़ा) एक और मुखिया, 100 गाँव का (उससे बड़ा) एक और मुखिया और 1000 गाँव का (उससे बड़ा) एक और मुखिया बनाना चाहिए। इस प्रकार ग्रामराज्य की स्थापना करनी चाहिए।

**45. ग्राम-दोषान् समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।**
**शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ।। 116 ।।**
गाँव में उत्पन्न हो रही त्रुटियों को गाँव का मुखिया 10 गाँव के मुखिया को बताए। 10 गाँव का मुखिया 20 गाँव के मुखिया को बताए।

**46. विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।**
**शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ।। 117 ।।**
20 ग्रामों का मुखिया 100 ग्राम वाले को और 100 ग्राम वाला 1000 गाँव वाले मुखिया को प्रतिदिन ग्रामों की स्थिति को बताए।

**47. तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक् कार्याणि चैव हि ।**
**राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस् तानि पश्येदतन्द्रितः ।। 120 ।।**
राजा के एक विश्वस्त और जागरूक प्रमुख सचिव को उन ग्राम कार्यों का तथा उससे भिन्न कार्यों का निरीक्षण करना चाहिए।

**48. नगरे नगरे चैकं कुर्यात् सर्वार्थचिन्तकम् ।**
**उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ।। 121 ।।**

प्रत्येक नगर में एक प्रभावकारी उच्च अधिकारी को रखना चाहिए, जोकि सभी के कार्यों को देखने वाला, तेजस्वी और महान् होना चाहिए। जैसे नक्षत्रों में चन्द्रमा होता है।

**49. राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।**
**भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः।।123।।**

राजा के शासन करने वाले अधिकारी प्रायः ठग और दूसरे के धनों को (रिश्वत के रूप से) लेने वाले हो जाते हैं। राजा को उन अधिकारियों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

**50. ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।**
**तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्।।124।।**

जो दुष्ट अधिकारी काम के लिए आए हुए लोगों से धन (रिश्वत के रूप में) ले लेते हैं, राजा को चाहिए कि उनका सर्वस्व छीनकर उन्हें देश से निकाल दे अथवा कठोर दण्ड का प्रावधान करे ताकि दुष्ट दुष्कर्म करने का साहस ही न जुटा पाये।

**51. यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्।**
**तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्।।128।।**

जैसे राजा प्रजा की रक्षा करने से फलयुक्त होता है या जैसे कर्मों का करने वाला कर्मफल से संयुक्त होता है। उसी प्रकार राजा को शुभफल की इच्छा से राष्ट्र में करों का विधान करना चाहिए।

**52. यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।**
**तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।।129।।**

जैसे जोंक, बछड़ा और भौंरा अपने-अपने भोजन को थोड़ा-थोड़ा करके ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार राजा को राष्ट्र से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेना चाहिए।

**53. नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।**
**उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलम् आत्मानं तांश्च पीडयेत्।।139।।**

(कर के सर्वथा छोड़ देने से) राजा को अपना मूल नष्ट नहीं करना

चाहिए। अतितृष्णा के कारण (अधिक करों से) प्रजा का मूल सुख नष्ट नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर वह अपने आप को और प्रजा को पीड़ित करता है।

**54. यस्य मंत्रं न जानन्ति समागम्य पृथग् जनाः।**
**स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः।।148।।**

जिस राजा की मंत्रणा को (मंत्रियों के अतिरिक्त) अन्य व्यक्ति मिलकर अथवा अलग-अलग नहीं जानते हैं, धन से दुर्बल होता हुआ भी वह राजा अपने सारे राष्ट्र का शासन करता है।

**55. संधि च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**
**द्वैधीभावं संश्रयं च षडगुणांश्चिन्तयेत् सदा।।160।।**

निम्नलिखित 6 नीति-गुणों का सदा चिन्तन करना चाहिए। संधि, युद्ध, चढ़ाई, सुरक्षा के स्थान पर स्थिति, भेद और किसी का आश्रय। अर्थात् किसी अन्य राज्य की सहायता।

**56. आसनं चैव यानं च संधि विग्रहमेव च।**
**कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च।।161।।**

सुरक्षापूर्वक स्थिति, आक्रमण, संधि, युद्ध, दो प्रकार की सेना करके स्वविजय तथा किसी अन्य राजा की सहायता लेना – इन 6 गुणों का कार्य को विचार कर प्रयोग करना उचित है।

**57. यदावगच्छेदायत्याम् आधिक्यं ध्रुवमात्मनः।**
**तदात्वे चाल्पिकां पीड़ां तदा संधिं समाश्रयेत्।।169।।**

जब भविष्य में अपने उत्कर्ष को निश्चित् रूप से देख रहा हो और वर्तमान समय में ह्रास, तो शत्रु से 'संधि' कर के उचित समय तक धीरज रखें।

**58. यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्।**
**अत्युच्छ्रितं तथाऽऽत्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्।।170।।**

जब अपनी सब प्रजा व सेना अत्यंत प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने वैसे अपने को भी समझे तभी शत्रु से युद्ध करे।

**59. यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।**
**परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ।। 171 ।।**
जब अपनी सैन्यशक्ति पुष्ट हो और शत्रु की इसके विपरीत दुर्बल हो, तो शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए ।

**60. यदा पुरबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।**
**तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ।। 174 ।।**
जब आप समझ लें कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय ले लेंवे ।

**61. साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।**
**विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन ।। 198 ।।**
साम (शांति), दाम, भेद—इन तीनों से अथवा इनमें से किसी एक से शत्रुओं को जीतने का यत्न करना चाहिए । पहले युद्ध से जीतने का प्रयत्न न करें ।

**62. अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युध्यमानोः ।**
**पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ।। 199 ।।**
युद्ध करने वालों की, युद्ध में विजय या पराजय अनित्य (संशययुक्त) है, अतः (जहाँ तक हो सके) युद्ध का परित्याग ही करना चाहिए ।

**63. त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ।**
**तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ।। 200 ।।**
साम, दाम और भेद इन तीनों उपायों का कार्यान्वित होना जब असम्भव देखे, तो पूरी तैयारी करके युद्ध करना चाहिए, जिससे शत्रु पर विजय प्राप्त हो जाए ।

# आठवाँ अध्याय

## (न्याय-व्यवस्था)

**1. व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।**
**मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत् सभाम् । । 1 । ।**

प्रजाओं के रक्षा-सम्बन्धी, कलह-सम्बन्धी, ऋणादि सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यवहारों की जांच-पड़ताल के लिए विचार-निपुण, सलाहकारों, मन्त्रियों और विद्वानों के साथ राजा को सभा लगानी चाहिए ।

**2. तत्रासीनः स्थितो वाऽपि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।**
**विनीतवेषाभरणः पश्येत् कार्याणि कार्यिणाम् । । 2 । ।**

सभ्यवेश तथा आभूषण पहिन कर राजा को सभा में प्रविष्ट होकर व्यवस्था के अनुसार बैठ कर अथवा खड़े होकर न्याय के प्रतीक दाहिना हाथ को ऊपर उठा कर कार्यार्थियों के कार्यों का विचार करके निर्णय करना चाहिए ।

**3. प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।**
**अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् । । 3 । ।**

लोक में पाए जाने वाले तथा शास्त्रों में कहे हुए विधानों के अनुसार राजा को प्रतिदिन अगले दो श्लोकों में कहे हुए विवादों के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् रूप से विचार करना चाहिए । जो नियम प्रजा की उन्नति के हो, उनको राजा राज्य नियम बनाये ।

**4. तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।**
**संभूय च समुत्थानं दतस्यानपकर्म च । । 4 । ।**

ऋण का भुगतान न करना, धरोहर सम्बन्धी, स्वामित्व के अभाव पर वस्तु का विक्रय, मिल कर व्यापार सम्बन्धी, दिए हुए पदार्थ का न दें अर्थात् वापिस न लौटाना ।

5. **वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।**
**क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ।। 5 ।।**
कर्मकार का वेतन-सम्बन्धी, वचन भंग, स्वामी और पशुपाल का क्रय-विक्रय अर्थात् लेन-देन में झगड़ा, दिये पदार्थों को मांगने पर न देना ।

6. **सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।**
**स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ।। 6 ।।**
सीमा सम्बन्धी विवाद, शारीरिक अपराध (मार-पीट), वाचिक अपराध, चोरी, डाका तथा बलात्कार, पर-स्त्री-अपहरण ।

7. **स्त्रीपुंधर्मो विभागाश्च द्यूतमाह्वय एव च ।**
**पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थितावि‍ह ।। 7 ।।**
पति-पत्नी सम्बन्धी झगड़ा, पैतृक दाय सम्बन्धी, जुआ, प्राणधारियों की शर्त सम्बन्धी । ये 18 प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं ।

8. **यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ।**
**तदा नियुञ्ज्याद् द्विद्वांसं, ब्राह्मणं कार्यदर्शने ।। 9 ।।**
राजा को जब कभी व्यवहार के देखने का अवसर न मिल पाए, तो राजा को चाहिए कि वह व्यवहार के निर्णय में निपुण किसी योग्य धार्मिक विद्वान् पुरुष को कार्य देखने के लिए व निर्णय के लिए नियुक्त कर देवे ।

9. **सोऽस्य कार्याणि संपश्येत् सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।**
**सभामेव प्रविश्याग्रयाम् आसीनः स्थित एव वा ।। 10 ।।**
नियुक्त पुरुष तीन अन्य सभ्य पुरुषों के साथ सभा में प्रवेश करे और वहाँ बैठकर अथवा व्यवस्था के अनुसार खड़े होकर, उसे सभी प्रकार के कार्यों की जांच-पड़ताल करनी चाहिए ।

10. **धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।**
**शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।। 12 ।।**

जिस सभा (न्यायालय) में अधर्म (अन्याय) से धर्म (न्याय) आहत हो जाता है और व्यवहारदर्शी सभासद् उस अन्याय (अधर्मरूपी) अन्यायी को दण्ड नहीं दे पाते, तो वे सभासद् ही उस कील (अधर्म) से आहत हो जाते हैं अर्थात् अधर्म से धर्म घायल हो जाता है ।

**11. सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।**
**अब्रुवन् विब्रुवन्वाऽपि नरो भवति किल्बिषी ।। 13 ।।**

विद्वान पुरुष को चाहिए कि या तो सभा में प्रवेश न करे, करे तो सत्य बोले । मौन रह कर अथवा अनुचित सत्य के विरुद्ध बोल कर व्यक्ति दूषित हो जाता है ।

**12. यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।**
**हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।। 14 ।।**

जिस न्यायालय में न्यायाधिकारियों के देखते हुए अधर्म (अन्याय) से धर्म (न्याय) और झूठ से सत्य मारा जाता है, उस न्यायालय के अधिकारी ही वास्तव में मृतक के समान हैं, जानो उनमें कोई भी नहीं जीता ।

**13. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।। 15 ।।**

(न्यायालय में) मारा हुआ धर्म मारने वाले का नाश कर देता है और रक्षा किया हुआ धर्म (न्याय) रक्षा करता है । इसलिए धर्म (न्याय) का हनन नहीं करना चाहिए । कहीं यह मारा हुआ धर्म (न्याय) उन सभ्यों को मार न डाले ।

**14. एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ।। 17 ।।**

संसार में एक धर्म ही है, जो मरणोपरान्त भी साथ जाता है । संसार के अन्य सभी पदार्थ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं अर्थात् साथ नहीं जाते । परन्तु धर्म का साथ कभी नहीं छूटता ।

**15. राजा भवत्यनेनास्तु, मुच्यन्ते च सभासदः ।**
**एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ।। 19 ।।**

जिस देश में निन्दनीय की निन्दा होती है (प्रशंसनीय की नहीं) और अपराधी को दण्ड मिलता है, उस देश का राजा निष्पाप हो जाता है और न्यायधिकारी भी पाप से मुक्त और पवित्र हो जाते हैं ।

**16. आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।**
**नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ।। 26 ।।**

आकार से, इशारों से, गति से, चेष्टा से, वार्तालाप से, आँख तथा मुख के विकार से किसी भी व्यक्ति के मन के विचारों का पता लग जाता है ।

**17. बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानु पालयेत् ।**
**यावत् स स्यात् समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ।। 27 ।।**

अनाथ बालक के पैतृक धन की रक्षा तभी तक राजा को करनी चाहिए जब तक कि वह स्नातक होकर न लौट आए अथवा शैशव-काल को पार करके युवक न हो जाए ।

**18. यथा नयत्यसृक्पातैर् मृगस्य मृगयुः पदम् ।**
**नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ।। 44 ।।**

जैसे शिकारी ज़ख्मी मृग के रक्त-चिह्नों से मृग को पा लेता है, इसी प्रकार राजा को भी तर्क, अनुमानादि प्रमाण के द्वारा धर्म के तत्त्व अर्थात् वास्तविक न्याय का पता लगाना चाहिए ।

**19. सत्यमर्थं च संपश्येद् आत्मानमथ साक्षिणः ।**
**देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ।। 45 ।।**

विवाद-निर्णय के समय मुकद्दमे की सत्यता, न्याय उद्देश्य अपनी आत्मा के आन्तरिक निर्णय को साक्षी के देश, रूप और काल को भली प्रकार देख लेना चाहिए । इस विधि से सत्यासत्य की जांच करनी चाहिए ।

**20. साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ।**
**धर्मस्यः कारणैरेतैर् हीनं तमपि निर्दिशेत् ।। 57 ।।**

जो अभियुक्त न्यायालय में यह कहे कि मेरे पास साक्षी है, परन्तु जब

उसे साक्षियों के लिए कहा जाए और वह साक्षी उपस्थित न कर सके, तो उसे पराजित उद्घोषित करना चाहिए ।

**21. यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ।**
**तादृशान् संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ।। 61 ।।**

(धन और भूमि सम्बन्धी) विवादों में धनिकों को किस प्रकार के साक्षी नियत करने चाहिए—उनको कैसे सत्य बोलना चाहिए—यह आगे कहा जाएगा ।

**22. साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।**
**वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ।। 72 ।।**

सभी प्रकार के शारीरिक अत्याचारों में व्यभिचार, चोरी आदि के अभियोगों में, गाली और दण्ड के अनुचित प्रयोग में साक्षियों की परीक्षा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि ये सब काम गुप्त होते हैं ।

**23. समक्षदर्शनात् साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्धयति ।**
**तत्र सत्यं ब्रुवन् साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।। 74 ।।**

प्रत्यक्ष देखने से, तथा अपने कानों से सुनने से साक्षी ठीक होती है । मुक़द्दमों में सत्य कहने वाला साक्षी धर्म तथा अर्थ वियुक्त नहीं होता । जो साक्षी मिथ्या बोले वे यथायोग्य दण्डनीय हों ।

**24. स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस् तद् ग्राह्यं व्यवहारिकम् ।**
**अतो यदन्यद्ब्रूयुर् धर्मार्थं तदपार्थकम् ।। 78 ।।**

साक्षीजन जो बात स्वभाव (सरलता) से कहें, उसी बात को निर्णय करने के लिए ग्रहण करना चाहिए । इसके विपरीत (भय, लोभादि से) जो साक्षीजन कहें, उसे विवाद के निर्णय के लिए (न्याय के लिए) न्यायाधीश को निरर्थक जानना चाहिए ।

**25. सभान्तः साक्षिणः प्राप्तान् अर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ।**
**प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ।। 79 ।।**

जब साक्षीजन अधिकरण में उपस्थित हों, तो वादी प्रतिवादी के सामने

राज्याधिकारी को आश्वासनपूर्वक आगे कहे हुए प्रकार के अनुसार साक्षियों को पूछना चाहिए ।

**26. यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिश्चेष्टितं मिथः ।**
**तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता । । 80 । ।**

इन दोनों वादी तथा प्रतिवादी के कार्य के सम्बन्ध में इन दोनों के जो कर्म हैं, उन सब को सत्य-सत्य बताइए । तुम्हारी इसमें साक्षी है ।

**27. सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।**
**तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः । । 83 । ।**

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता है, सत्य ही से धर्म बढ़ता है । इसलिए सभी वर्णों के साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है ।

**28. आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः ।**
**माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् । । 84 । ।**

आत्मा ही आत्मा का साक्षी है, आत्मा ही आत्मा की गति है । सत्य बोलने से धर्म बढ़ता है । अतः व्यक्तियों के उत्तम साक्षीरूप इस अपने आत्मा को (झूठ बोलकर) हनन मत कीजिए ।

**29. एकोऽहमस्मीत्यात्मानं, यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।**
**नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः । । 91 । ।**

हे श्रेष्ठ पुरुषो ! मैं अकेला हूँ मुझे कोई नहीं देखता यह जो तुम मानते हो (यह ठीक नहीं) । पुण्य और पाप का देखने वाला परमात्मा सदा तुम्हारे हृदय में बैठा है । उस परमात्मा से डर कर सदा सत्य बोला कर ।

**30. यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते ।**
**तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः । । 96 । ।**

जिसके बोलने पर उसका सर्वद्रष्टा आत्मा शंकित नहीं होता, (अर्थात् बोलते हुए जिसके अन्तरात्मा में शंका नहीं उठती) संसार में उस पुरुष से बढ़कर कोई और श्रेष्ठ पुरुष नहीं है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ।

**31. लोभन्मोहाद्भयान्मैत्रात् कामात् क्रोधात्तथैव च ।**
**अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ।। 118 ।।**
लोभ, मोह, भय, मैत्री, स्वार्थेच्छा, क्रोध, अज्ञान और मूढता के कारण जो गवाही देवें, उसको झूठा समझा जाता है ।

**32. अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।**
**सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्डच्येषु पातयेत् ।। 126 ।।**
अपराधी की अपराध के समय की अवस्था, देश और काल को भली प्रकार जान करके उसकी शक्ति तथा अपराध को देखकर अपराधी को दण्डित करना चाहिए । अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करें ।

**33. अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ।**
**अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।। 127 ।।**
(पूर्वश्लोक में कही हुई बातों के देखे बिना) अन्यायपूर्वक दिया हुआ दण्ड इस लोक में यश और कीर्ति को नाश करने वाला, तथा परलोक में भी दुःख देने वाला होता है । इसलिए इस प्रकार के दण्ड का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

**34. अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्डच्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।**
**अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ।। 128 ।।**
अनपराधियों को दण्डित करने वाला तथा अपराधियों को दण्ड न देने वाला राजा पश्चात् घोर निन्दा का पात्र होता है तथा दुःखी होता है । अतः अपराधी पुरुषों को ही दण्ड देना चाहिए ।

**35. वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद् धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।**
**तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ।। 129 ।।**
पहले वाणी का दण्ड, फिर धिक्कार का दण्ड, फिर धन का दण्ड और उसके पश्चात् शारीरिक दण्ड अर्थात् कोड़ा, बेंत से मारना व सिर काट देना कहा गया है ।

**36. वधेनापि यदा त्वेतान् निग्रहीतुं न शक्नुयात् ।**
**तदैषु सर्वमप्येतत् प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ।। 130 ।।**
यदि शारीरिक दण्ड से अपराधी नियंत्रित न हो तो चारों दण्डों को एक साथ तीव्र रूप से लागू कर देना चाहिए ।

**37. कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।**
**महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ।। 179 ।।**
कुलीन, सदाचारी, धार्मिक, सत्यवादी, अच्छे आचरण वाले, बड़े परिवार वाले, आर्य धनी के पास बुद्धिमान् को धरोहर रखनी चाहिए ।

**38. यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।**
**स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ।। 180 ।।**
जो व्यक्ति जिसके हाथ में जैसी धरोहर रखे, वैसी ही उसे लौटाई जानी चाहिए । जैसा देना वैसा ही लेना उचित है ।

**39. चोरैर्हृतं जलेनोढम् अग्निना दग्धमेव वा ।**
**न दद्याद् यदि तस्मात् स न संहरति किंचन ।। 189 ।।**
धरोहर को यदि चोर चुरा ले जाएं, जल बहा ले जाए, अग्नि जला दे, तो वह धरोहर नहीं लौटाई जा सकती । क्योंकि धरोहर रखने वाला उसमें से कुछ नहीं लेता । वह किसी शेष का भागी नहीं होता ।

**40. यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।**
**तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ।। 191 ।।**
जो धरोहर को लौटाता नहीं, और जो धरोहर रखे बिना मांगता है, चोर की भाँति समान रूप से उन दोनों को दण्डित करना चाहिए ।

**41. उपधाभिश्च यः कश्चित् परद्रव्यं हरेन्नरः ।**
**ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ।। 193 ।।**
यदि कोई अधिकारी छल से (शासन का भय दिखाकर) किसी के धन का अपहरण करता है, तो उसे उसके सहायकों सहित सभी के प्रत्यक्ष अनेक प्रकार के दण्डों से दण्डित करना चाहिए ।

**42. परमं यत्नमातिष्ठेत् स्तेनानां निग्रहे नृपः ।**
**स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते । । 302 । ।**

चोरों को वश में लाने का राजा को पूरा यत्न करना चाहिए । चोरों के प्रतिकार से राष्ट्र बढ़ता है और यशस्वी होता है ।

**43. अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।**
**सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् । । 303 । ।**

राष्ट्र को निर्भय करने वाला राजा सदा आदरणीय होता है । उस राजा का वह यज्ञ सदा वृद्धि को प्राप्त होता है, जिस यज्ञ की दक्षिणा देने वाला सदा बढ़ता जाता है । प्रजाओं की ओर से उसे सदा आदर मिलता है ।

**44. रक्षन् धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।**
**यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः । । 306 । ।**

हिंसकों का नाश करने वाला तथा प्राणियों की धर्मानुसार रक्षा करने वाला राजा प्रतिदिन मानो उन यज्ञों को कर रहा है, जिनकी दक्षिणा सैकड़ों तथा हज़ारों मुद्राएं हैं । अर्थात् इतने बड़े यज्ञों जैसा पुण्यकार्य करता है ।

**45. अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।**
**अरक्षितारमत्तरं नृपं विद्यादधोगतिम् । । 309 । ।**

शास्त्रोक्त मर्यादा का विचार न करने वाले, नास्तिक, प्रजाओं को लूटने वाले, रक्षा न करने वाले, प्रजा को खाने वाले राजा को नीच राजा समझना चाहिए ।

**46. शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।**
**अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्विषम् । । 316 । ।**

प्राण-त्याग के दण्ड देने से अथवा मृतकल्प छोड़ चोर चोरी के पाप से छूट जाता है । परन्तु जो राजा चोर को दण्डित नहीं करता, वह राजा चोरी के पाप को स्वयं प्राप्त कर लेता है ।

**47. पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।**
**नादण्ड्यो नाम राक्षोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।। 335 ।।**
राजा का अपना पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित–इनमें जो कोई भी मर्यादा को तोड़ता है, वह राजा से दण्डनीय है । तब राजा किसी का पक्षपात न करे परन्तु यथोचित दण्ड देवे ।

**48. कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।**
**तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ।। 336 ।।**
जिस अपराध से साधारण व्यक्ति पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को 1000 पैसा दण्ड होवे । यही शास्त्र का निर्णय है ।

**49. न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।**
**समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान् ।। 347 ।।**
मित्र के कारण से, अधिक धन आ जाने के विचार से राजा डाकुओं को बन्धन, छेदन, किये बिना कभी न छोड़े, वे डाकू प्रजामात्र के लिए भयकारक हैं ।

**50. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।**
**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।। 350 ।।**
गुरु, बाल, वृद्ध, सुशिक्षित ब्राह्मण भी चाहे शास्त्रों का ज्ञाता क्यों न हो, यदि डाकू के रूप में हो तो राजा को बिना विचारे उसे मार डालना चाहिए ।

**51. नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।**
**प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ।। 351 ।।**
डाकू को छिपकर अथवा प्रकट रूप में मारने से मारने वाले को किसी प्रकार का दोष नहीं लगता । क्योंकि अपराधी के निन्दनीय कार्य से राजा को क्रोध आना ठीक ही है । क्योंकि क्रोध से क्रोध की लड़ाई है ।

**52. परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।**
**उद्वेजनकरैर्दण्डैश् छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ।। 352 ।।**
परस्त्री से व्यभिचार करने वाले पुरुषों को उत्पीड़न करने वाले (नाक,

कान, हाथ आदि काटना, दागना आदि) दण्डों से दण्डित करके राजा देश से बाहर निकाल दे ।

**53. यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।**
**न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् । । 386 । ।**

जिस राजा के राज्य में चोर, व्यभिचारी, दुष्ट वचन बोलने वाला, डाकू, बदमाश और राजा की आज्ञा भंग करने वाला नहीं हैं, वह राजा इन्द्र की पदवी को प्राप्त करता है अर्थात् अति श्रेष्ठ हैं ।

**54. एतेषां निग्रहो राज्ञः पंचानां विषये स्वके ।**
**साम्राज्यकृत् सजात्येषु लोके चैव यशस्करः । । 387 । ।**

जिस राजा के देश में पूर्व श्लोक में वर्णित पाँचों प्रकार के अपराधियों का अभाव होता है, वह राजा राजाओं में सम्राट् होता है और लोक में उसका यश होता है । राजाओं में शिरोमणि बन जाता है ।

**55. तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।**
**षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत । । 403 । ।**

तराजू, बाट आदि सभी परीक्षा किये हुए होने चाहिए । छः-छः मास के पश्चात् उनकी फिर फिर परीक्षा करनी चाहिए । ताकि उसमें किसी प्रकार का छल घट बढ़ न कर सके ।

**56. यन्नावि किंचिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ।**
**तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽशतः । । 408 । ।**

मल्लाहों के अपराध से यदि नौका में कोई हानि हो जाए, अर्थात् नौकारोहियों का नुकसान हो जाए, तो मल्लाहों को ही मिलकर उसकी पूर्ति कर देनी चाहिए ।

# नौवाँ अध्याय

## (पति-पत्नी धर्म)

1. **पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ।**
**संयोगे विप्रयोगे च धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् । । 1 । ।**
धर्ममार्ग पर चलते हुए स्त्री तथा पुरुष के संयोग-सम्बन्धी तथा वियोग-सम्बन्धी सदा साथ रहने वाले कर्त्तव्यों का वर्णन इस अध्याय में किया जाएगा ।

2. **कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।**
**मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता । । 4 । ।**
समय आ जाने पर कन्या के विवाह का कार्य न करने वाला पिता निन्दनीय होता है । गृहस्थ धर्म के अनुसार पत्नी के पास न जाने वाला पति (पिता) के मरने के उपरान्त माता की रक्षा न करने वाला पुत्र—ये तीनों निन्दनीय होते हैं ।

3. **सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।**
**द्वयोर्हि कुलयोः शोकम् आवहेयुररक्षिताः । । 5 । ।**
छोटे-छोटे प्रसंग (कुसंगों आदि दुर्गुणों) से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए । इनकी रक्षा न होने के कारण विकारों के आ जाने से दोनों कुलों (मातृकुल, श्वसुरकुल) में शोक पैदा हो जाता है ।

4. **स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।**
**स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति । । 7 । ।**
पति अपनी स्त्री का सुचारू रूप से पालन तथा प्रयत्नपूर्वक कुसंग से रक्षा करता हुआ अर्थात् अपनी सन्तति आचरण, कुल तथा अपने धर्म की रक्षा करता है । स्त्री के कुसंग में पड़ जाने से सब कुछ बिगड़ जाता है । क्योंकि स्त्री ही कुल और धर्म का आधार है ।

5. **पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।**
**जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः । । 8 । ।**

पति वीर्य रूप में स्त्री में प्रवेश करके गर्भ बनकर सन्तान रूप से संसार में उत्पन्न होता है। स्त्री का यही जायापन स्त्रीपन है तो इस स्त्री में सन्तान रूप से पति पुनः उत्पन्न होता है।

6. **अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।**
**शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे।।11।।**
धन के संग्रह तथा व्यय, घर की सफाई, अन्न के पाक पदार्थों में शुद्धि, धर्मकृत्य और घर के साधनों की देखभाल में स्त्री को लगाना चाहिए।

7. **अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।**
**आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।।12।।**
बड़े-बड़े ज्ञानियों से घर की चारदीवारी में बन्द की हुई भी स्त्रियां असुरक्षित और बुराइयों से बच नहीं पाती। इसके विपरीत जो महिलाएं अपना धर्म समझती हुई अपनी रक्षा आप करती हैं वे ही सुरक्षित होती हैं।

8. **पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।**
**स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्।।13।।**
स्त्रियों के 6 दोष हैं– सुरापान, दुर्जनों का संग, पति का वियोग, वृथा घूमना, अधिक सोना और किसी दूसरे के घर में वास अथवा शयन करना।

9. **प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।**
**स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।।26।।**
स्त्रियां संतानोत्पत्ति हेतु सौभाग्य वाली, पूजा के योग्य और घर को प्रकाशित करने वाली हैं। घरों में स्त्रियां लक्ष्मीरूप हैं स्त्री और लक्ष्मी शोभा धन में किंचित भी भेद नहीं।

10. **उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।**
**प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।।27।।**

संतति का उत्पादन, उत्पन्न संतति का पालन और प्रतिदिन की लोक-यात्रा का अच्छी प्रकार चलाना। अर्थात् घर के कार्यों को प्रतिदिन सुचारू रूप से चलाना।

**11. अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।**
**दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मानश्च ह।।28।।**

सन्तानोत्पत्ति, धर्मकार्य उत्तमसेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है यह सब स्त्री के अधीन होता है।

**12. भ्रातुर्ज्येष्टस्य भार्या वा गुरुपत्यनुजस्य सा।**
**यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।।57।।**

बड़े भाई की जो स्त्री होती है, वह छोटे भाई के लिए गुरु पत्नी के समान है और छोटे भाई की जो स्त्री है, वह बड़े भाई के लिए पुत्र वधु के समान होती है। अतः सदा उक्त पवित्र भावना ही रखनी चाहिए।

**13. देवराद्धा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।**
**प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये।।59।।**

सन्तान के न होने पर बड़ों की अनुमति से देवर अथवा किसी अन्य सजातिय (उसी कुल में उत्पन्न) से इच्छानुसार स्त्री को नियोग से संतति उत्पन्न कर लेनी उचित है। अर्थात् जितनी सन्तान अभीष्ट हो उतनी प्राप्त कर लें।

**14. विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत् कार्यवान् नरः।**
**अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि।।74।।**

अपनी भार्या के लिए निर्वाह का अर्थात् भरण-पोषणका प्रबन्ध करके ही पति को कार्यवश परदेश में प्रवास करना चाहिए। निर्वाह के अभाव से शीलवती स्त्री भी बदचलन हो जाती है। अर्थात् आजीविका का प्रबन्ध करके परदेश जाना चाहिए।

**15. काममामरणात्तिष्टेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।**
**न चैवैनां प्रयच्छेत् तु गुणहीनाय कर्हिचित्।।89।।**

चाहे कन्या पितृगृह में बिना विवाह के भी मृत्युपर्यन्त बैठी रहे, परन्तु दुष्ट पुरुष के साथ तथा गुणहीन से कभी भी कन्या का विवाह न करें ।

**16. त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती ।**
**ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम् । । 90 । ।**

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त अपने सदृश पति से विवाह करे । चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुंवारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए ।

**17. अदीयमाना भर्तारम् अधिगच्छेद् यदि स्वयम् ।**
**नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति । । 91 । ।**

यदि माता-पिता द्वारा विवाह समय तक कन्या का विवाह न किया जा सके तो उस कन्या को स्वयं पति प्राप्त कर लेना चाहिए । ऐसा करने से न तो कन्या पाप को प्राप्त होती है और न ही उसका पति पापी होता है ।

**18. प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः ।**
**तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः । । 96 । ।**

स्त्रियों की रचना गर्भ धारण करके सन्तान के उत्पादन के लिए हुई और व्यक्तियों की सन्तान उत्पादन कराने के लिए हुई । इसलिए वेद में स्त्री और पुरुष का धर्म कार्यों का अनुष्ठान एक साथ करने का विधान किया है ।

**19. ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ।**
**भजेरन् पैतृकं रिक्थं अनीशास्ते हि जीवतोः । । 104 । ।**

माता-पिता के मरणोपरान्त ही सब भाई एकत्रित होकर पितृधन एक समान प्राप्त कर लें । क्योंकि माता-पिता के जीते वे धन के अधिकारी नहीं हो सकते हैं ।

**20. ज्येष्ठ एवतु गृह्णीयात् पित्र्यं धनमशेषतः ।**
**शेषास्तमुपजीवेयुर् यथैव पितरं तथा ।। 105 ।**
पृथक्-पृथक् न रहने पर बड़े भाई को ही सारा पितृधन ले लेना चाहिए । शेष भाई उस बड़े भाई के पास उसी प्रकार रहें जैसे पिता के पास रहते जीवन चला रहे थे ।

**21. पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः ।**
**पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ।। 108 ।।**
बड़े भाई को पिता के समान ही छोटे भाइयों की पालना करनी चाहिए । जैसे पुत्र पिता से व्यवहार करते हैं, वैसे ही छोटे भाइयों को बड़े भाई से धर्मानुसार बर्ताव करना चाहिए और भाई भी उसे पिता समान मानें ।

**22. यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्थान् मातेव स पितेव सः ।**
**अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात् स संपूज्यस्तु बन्धुवत् ।। 110 ।।**
जो बड़ा भाई अपने बड़प्पन के कर्त्तव्य का पालन करता है, वह माता और पिता के समान है । इसके विपरीत जो बड़प्पन के कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह अन्य बन्धुओं की भाँति केवल आदर के योग्य है ।

**23. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।**
**तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्या कथमन्यो धनं हरेत् ।। 130 ।।**
जैसा पुरुष आप है, वैसा ही उसका पुत्र है । जैसा पुत्र है, वैसी ही कन्या है । उस आत्मरूप पुत्र, कन्या के होते हुए कोई दूसरा पैतृक धन कैसे ले सकता है ।

**24. मातुस्तु यौतकं यत्स्यात् कुमारीभाग एव सः ।**
**दौहित्र एव च हरेद् अपुत्रस्याखिलं धनम् ।। 131 ।।**
जिस सम्पत्ति पर माता का अधिकार है, वह भाग कन्या का होता है । जिसके यहाँ कोई सन्तान नहीं, नाना का वह सारा धन दोहते का है ।

**25. द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।**
**राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् । । 221 । ।**

राजा को अपने राष्ट्र से जुआ में चेतन प्राणियों को दाव पर लगाकर खेले जाने वाले समाह्वय (जुए का विशेष भेद) को बन्द कर देना चाहिए । ये दोनों दोष राजाओं के राज्य का अन्त कर देने वाले हैं ।

**26. अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।**
**प्राणिभिःक्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः । । 223 । ।**

जड़ पदार्थों (पांसे, डालें, कौडियां, ताश आदि) से जो जुआ खेला जाता है, उसे जुआ कहते हैं और चेतन प्राणियों (घोड़ों, बटेरों, मेढों, कुत्तों आदि) से जो खेला जाता है, उसे समाह्वय जानना चाहिए । ये एक प्रकार का जुआ है ।

**27. द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात् कारयेत वा ।**
**तान् सर्वान् घातयेद् राजा शूद्रांश्च द्विजलिगिंनः । । 224 । ।**

जो व्यक्ति जुआ और समाह्वय को खेलते तथा खिलाते हैं, उन सभी दुष्ट मनुष्यों को दण्डित करना चाहिए, वे शूद्र हैं, चाहे उनके सभी बाहिर के चिह्न वश भूषा द्विजों की भाँति क्यों न हों ।

**28. कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांच मानवान् ।**
**विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् । । 225 । ।**

जुआरियों, चापलूसों, क्रूर, पाषण्डी, असभ्य नाचने गाने वाले, समाज विरुद्ध कर्म करने वालों तथा सुरापान करने वालों को तत्काल अपने राष्ट्र से निकाल देना राजा के लिए उचित है । क्योंकि ये शास्त्र विरुद्ध बुरे कर्म हैं ।

**29. ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।**
**धनोष्मणा पच्यमानास् तान्निः स्वान् कारयेन्नृपः । । 231 । ।**

राजा से नियुक्त जो अधिकारी रिश्वत के धन की गर्मी से युक्त हुए काम कराने वाले के कार्यों का नाश कर देते हैं, उनका सारा धन राजा को छीन लेना चाहिए ।

**30. अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ।**
**तत्स्वयं नृपतिः कुर्याद् तान् सहस्रं च दण्डयेत् । । 234 । ।**
मन्त्रिगण तथा न्यायकर्ता जिन कार्यों को न्यायानुसार नहीं करते, उन मन्त्रियों तथा न्यायकर्ताओं को जुर्माना रूप दण्ड देते हुए राजा को स्वयं उन प्रजाकार्यों का निर्णय कर देना चाहिए ।

**31. रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।**
**नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः । । 253 । ।**
सदाचारियों के रक्षण से तथा राज्य-कण्टकों (दुष्टों) के शोधन से प्रजापालन के कार्यों में तत्पररहने वाला राजा विस्तृत राज्य के उत्तम सुख को भोगते हैं ।

**32. निर्भयं तु भवेद् यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।**
**तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुम । । 255 । ।**
राजा के बाहुबल से रक्षित राष्ट्र जब निर्भय हो जाता है, तो उस राजा का वह राष्ट्र सदा उस वृक्ष की नाई बढ़ता है, जो कि वृक्ष जल से सींचा जाता है ।

**33. द्विविधांस्तस्करान्विद्यात् परद्रव्यापहारकान् ।**
**प्रकाशांश्चप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः । । 256 । ।**
गुप्तचर ही राजा के नेत्र हैं । गुप्तचरों के द्वारा पराये धन को छिपकर तथा प्रत्यक्ष रूप से द्रव्यों का अपहरण करने वाले दो प्रकार के चोरों की जानकारी रखें ।

**34. प्रकाशवंचकास्तेषां नाना पण्योपजीविनः ।**
**प्रच्छन्नवंचकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः । । 257 । ।**
प्रत्यक्ष रूप से ठगने वाले वे चोर हैं, जो व्यापारी अनुचित रूप से पर-धन को ग्रहण करते हैं । जो रात्रि में छिपकर अपहरण करके जंगल में रहने वाले हैं वे गुप्त चोर हैं । दोनों प्रकार के चोरें की जानकारी रखें ।

35. **नहि दण्डादृते शक्यः कर्तु पापविनिग्रहः ।**
**स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ । । 263 । ।**
जो लोग चोर और पाप बुद्धि हैं, जो लोक में भोले बन कर लोगों को ठगा करते हैं उनके पापों को दूर करने का दण्ड के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है । कठोर दण्ड के बिना अपराध नहीं रुक सकते ।

36. **कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।**
**राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते । । 301 । ।**
सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में राजा का ही आचार-व्यवहार विशेष है अर्थात् राजा जैसा राज्य को बनाता है, उस राज्य में वैसा ही युग बन जाता है । राजा को ही युग स्रष्टा कहा गया है ।

37. **कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ।**
**कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् । । 302 । ।**
जब राजा सो जाये अथवा राज कार्यों की उपेक्षा करे तो कलियुग, जब जागता है अर्थात् राजकार्य को सामान्यतः करता है तो द्वापरयुग, जब वह प्रजा के हितकारी कार्य करने के लिए तत्पर होता है, तो त्रेतायुग और जब विचार से न्यायानुसार कर्म करता है तो सतयुग होता है ।

# दसवाँ अध्याय

## (आपद् धर्म)

1. **वैश्यस्तु कृतसंसकारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ।**
**वार्तायां नित्ययुक्तःस्यात्पशूनां चैव रक्षणे । । 9/326/1 । ।**
यज्ञोपवीत संस्कार विधि पूर्ण होने के पश्चात् वैश्य विवाह करके व्यापार में और पशुपालन में सदा लगा रहे ।

2. **मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ।**
**गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् । । 9/329/2 । ।**
वैश्य मणि, मोती, प्रवाल आदि के, लोहे आदि धातुओं के, कपड़ों के, सुगन्धित कपूर, कस्तूरी आदि पदार्थों के और रसायनों के मूल्यों के कम-अधिक भावों को जानें ।

3. **बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ।**
**मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः । । 9/330/3 । ।**
वैश्य सब प्रकार के बीजों को बोने की विधि को जानें और खेतों के गुण दोषों को जाने तथा तोलने के बाटो और तराजुओं से सम्बद्ध सभी बातों की जानकारी रखें ।

4. **सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ।**
**लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् । । 9/331/4 । ।**
वस्तुओं के अच्छे और बुरे पन को, देशों के गुणों और दोषों को, बेची जाने वाली वस्तुओं की लाभ हानि को तथा पशुओं के संवर्धन के उपायों को वैश्य लोग जानें ।

5. **भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् । ।**
**द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च । । 9/332/5 । ।**
नौकरों के वेतन विविध दंशों में रहने वाले लोगों की विभिन्न भाषाएं

वस्तुओं के प्राप्ति स्थान तथा मिश्रण आदि की विधियां और क्रय-विक्रय की विधि को जानें ।

6. **धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुक्तमम् ।**
**दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ।। 9/333/6 ।।**
वैश्य इस प्रकार धर्म पूर्वक उत्तम धन की वृद्धि के लिये अधिक से अधिक यत्न करें और सब प्राणियों को प्रयत्नपूर्वक अन्न उपजाकर देता रहे ।

7. **विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यश स्विनाम् ।**
**शुश्रूषैव तू शूद्रस्य धर्मो नैश्श्रेयसः परः ।। 9/334/7 ।।**
वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों यशस्वी गृहस्थियों की सेवा करना ही शूद्र का कल्याणकारक उत्तम धर्म है ।

8. **ब्राह्मणः क्षत्रियों वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।**
**चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।। 10/4/9 ।।**
बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण विद्याध्ययन रूपी दूसरा जन्म प्राप्त करने वाले हैं । अतः द्विज कहलाते हैं । चौथा विद्याध्ययन रूपी दूसरा जन्म वाला ब्रह्मजन्म से रहित शूद्र वर्ण है । पांचवा कोई वर्ण नहीं है ।

9. **मुखबाहूरुपजानां या लोके जातयो बहिः ।**
**म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृता ।। 10/45/10 ।।**
लोक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो से श्रेष्ठ कर्तव्ययपालन न करने के कारण बहिष्कृत जो जातियां हैं वे सब दस्यु कहलाती हैं ।

10. **अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियतात्मता ।**
**पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ।। 10/58/12 ।।**
अनार्य व्यवहार, स्वभाव की कठोरता, निर्दयता, यज्ञादि के प्रति उपेक्षा भाव लोक में पुरुष के अनार्य अर्थात् दुष्ट प्रवृत्ति के सूचक हैं । अतः ये आर्य वर्णों के अन्तर्गत नहीं हैं ।

**11. पित्र्यं वा भजते शीलं मातुवोभयमेववा ।**
**न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ।। 10/59/13 ।।**
बुरे माता पिता से उत्पन्न व्यक्ति दोनों के स्वभाव को धारण किये होता है। वह अपने स्वभाव को किसी भी प्रकार से नियंत्रित नहीं कर सकते। उसका बुरा स्वभाव किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाता है।

**12. शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।**
**क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ।। 10/65/14 ।।**
(विद्या आदि के कारण) शूद्र कुल में उत्पनन होकर ब्राह्मण बन जाता है और (विद्या का परित्याग कर देने से) ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

**13. एष धर्मविधिःकृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।**
**अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चितत्तविधिं शुभम् ।। 10/131/15 ।।**
चारों वर्णों के व्यक्तियों का सम्पूर्ण धर्म-विधान कहा है। इसके बाद शुभ प्रायश्चित की विधि को कहूँगा।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## (प्रायश्चित विधि)

1. **अकुर्वन विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।**
**प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते । । 44 । ।**
शास्त्र में विहित कर्मों का परित्याग करके निन्दित कर्मों का सेवन करता हुआ, शास्त्र निन्दित इन्दियों के भोगों में अनुरक्त व्यक्ति प्रायश्चित का भागी होता है ।

2. **ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च ।**
**पापकृन्मुच्यते पापात् तथा दानेन चापदि । । 227 । ।**
अपने पाप के दुःख का अनुभव करने से, अपने दोष को सब के सामने प्रकट करने से, पश्चाताप करने से, तप और स्वाध्याय, वेदाभ्यास से तथा दानादि से, पापी पाप भावना से रहित हो जाता है ।

3. **कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात् पापात् प्रमुच्यते ।**
**नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः । । 230 । ।**
अपराध पाप होने पर यदि व्यक्ति पश्चाताप करता है, तो वह उस पाप कर्म की वृत्ति से छूट जाता है । मैं फिर पाप नहीं करूँगा जब यह दृढ़ धारणा बना लेता है, तो वह पवित्र हो जाता है ।

4. **एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ।**
**मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् । । 231 । ।**
मरने के पश्चात् भी कर्मों का फल अवश्य मिला करता है—यह सोच कर व्यक्ति को वाणी, मन तथा शरीर से शुभ कर्म ही करने चाहिएँ । कभी भी पापकर्म में लिप्त नहीं होना चाहिए ।

5. **अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।**
**तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीय न समाचरेत् । । 232 । ।**

यदि अज्ञान से अथवा ज्ञान से नीच कर्म हो गया है, तो उससे छुटकारा पाने का विचार करते हुए दोबारा उसे कभी नहीं करना चाहिए । इससे वह भविष्य में पाप कर्म से बच जायेगा ।

6. **यथैधस्तेजसां वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।**
**तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ।।246।।**

जैसे आग अपने तेज से लकड़ी को क्षण भर में भस्म कर देती है उसी प्रकार विद्वान् वेद ज्ञान रूपी अग्नि से सभी पाप भावनाओं को नष्ट कर देता है । अर्थात् मन में उठे दुष्विचारों को समाप्त कर देता है ।

7. **यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्ठं विनश्यति ।**
**तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ।।263।।**

जैसे बड़ी नदी में पड़कर मिट्टी का ढेला शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार वेदत्रयी के ज्ञान से सभी पाप भावनाएं नष्ट हो जाती हैं ।

8. **ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ।**
**एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित ।।264।।**

ऋक्, यजु, साम यही त्रिविद्या है । जो इन तीन वेदों को अच्छी प्रकार से जान लेता है । वही वेदवेता कहलाता है ।

# बारहवाँ अध्याय

## (कर्मफल विधान)

**1. शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।**
**कर्मजा गतयो नृणाम् उत्तमाधममध्यमाः ।।3।।**
व्यक्तियों द्वारा मन, वाणी और शरीर से किये जाने वाले शुभ तथा अशुभ कर्मों के फलानुसार उनकी उत्तम, मध्यम तथा अधम गति जन्मावस्थाएं होती है ।

**2. तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।**
**दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात् प्रवर्तकम् ।।4।।**
उत्तम, मध्यम और अधम दशा में वर्तमान इस देह-धारी के तीन प्रकार के मानसिक, चार प्रकार के वाचिक और तीन प्रकार के शारीरिक अर्थात् दस प्रकार के कर्मों का प्रवर्तक मन को ही समझना चाहिए ।

**3. परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।**
**वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ।।5।।**
दूसरे के धन के ग्रहण का चिन्तन, मन में बुरी बातों का चिन्तन, द्वेष करना, ईर्ष्या करना अथवा मिथ्या निश्चय करना परलोक की व्यर्थता—ये उपर्युक्त मन के तीन प्रकार के अशुभ कर्म हैं ।

**4. पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।**
**असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।।6।।**
वाचिक अधर्म चार हैं – कठोरता, झूठ बोलना, व्यर्थ बकवाद और सब प्रकार की चुगली ये वाणी के अशुभ कर्म हैं ।

**5. अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।**
**परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ।।7।।**
शरीर संबंधी दुष्ट कर्म तीन हैं—अन्याय से दूसरे का धन लेना, शास्त्र

विरुद्ध किसी को पीड़ा देना और परस्त्रीगमन अर्थात् व्यभिचार करना ।

6. **मानसं मनसैवायम् उपभुङक्ते शुभाशुभम् ।**
**वाचा वाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् । । 8 । ।**
मन से किए हुए शुभ-अशुभ कर्मों के फल का उपभोग मन से, वाणी से किए शुभ-अशुभ कर्मों का फल वाणी से और शरीर द्वारा किए इष्ट-अनिष्ट कर्मों के फल और सुख-दुःख का उपभोग शरीर से ही प्राणी करता है ।

7. **सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन् विद्यादात्मनो गुणान् ।**
**यैर्व्याप्येमान् स्थितो भावान् महान् सर्वानशेषतः । । 24 । ।**
शरीर के सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों को आत्मा को प्रभावित करने वाले प्रकृति के गुण समझें । इन तीन गुणों में व्याप्त हुआ प्राणी स्थावर तथा जंगम भावों को प्राप्त होता है । सभी प्राणियों के शरीर प्रकृति के इन्हीं तीनों गुणों से व्याप्त हो रहे हैं ।

8. **सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।**
**एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः । । 26 । ।**
सत्त्वगुण ज्ञान है, तमोगुण अज्ञान है, राग और द्वेष रजोगुण है । इन तीनों गुणों के व्यापक स्वरूप से सभी प्राणियों के शरीर व्याप्त हैं । ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं ।

9. **तत्र यत् प्रीतिसंयुक्तं किचिंदात्मनि लक्षयेत् ।**
**प्रशानतमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् । । 27 । ।**
जब स्वयं व्यक्ति प्रीतियुक्त, शान्त और निर्मल आभा से युक्त भावों का अनुभव करता है, तो उसे वह सत्त्वगुण समझना चाहिए ।

10. **यत्तु दुःखसमायुक्तम् अप्रीतिकरमात्मनः ।**
**तद् रजोप्रतिघं विद्यात् सततं हारि देहिनाम् । । 28 । ।**

जब मानव स्वयं दुःखयुक्त और अप्रीतिकर देखता है, तो उसे वहाँ रजोगुण समझना चाहिए, जिसको रोकना कठिन है और जो निरन्तर सबको अपनी ओर खींच लेता है ।

**11. यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तम् अवयक्तं विषयात्मकम् ।**
**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ।। 29 ।।**

जब मोह से युक्त, विषयग्रस्त, अव्यक्त और अतर्कणीय अपने-आपको जानता है, तब उसे तमोगुण समझना चाहिए ।

**12. त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।**
**अग्रयो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।। 30 ।।**

इन तीनों गुणों का जो उत्तम, मध्यम और अधम फल है उसको पूर्णभाव से कहते हैं ।

**13. वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शोचमिन्द्रियनिग्रहः ।**
**धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ।। 31 ।।**

निरन्तर वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, पवित्रता, इन्द्रिय-संयम, धार्मिक कर्म और आत्म-चिन्तन—ये सात्विक गुण के लक्षण हैं ।

**14. आरम्भरुचिताऽधैर्यम् असत्कार्यपरिग्रहः ।**
**विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ।। 32 ।।**

कार्य के आरम्भ में कुछ देर तक रुचि (और फिर अरुचि), अधीरता, असत्कार्य का ग्रहण और सदा विषयों के उपभोग की लालसा—ये रजोगुण के फल हैं ।

**15. लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।**
**याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ।। 33 ।।**

लोभ, सदा नींद, अधीरता, क्रूरता, नास्तिकता, ईश्वर में श्रद्धा न होना, वृत्तिभेद, भिन्न-भिन्न अन्तःकरण की वृत्ति, भिखारीपन और प्रमाद अर्थात् व्यसनों में फंसा हुआ – ये तमोगुण के फल हैं ।

16. **यत् कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।**
**तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ।।35।।**
जिस कर्म को करने की इच्छा से, कर्म करते हुए या कर्म करने के बाद व्यक्ति को लज्जा, भय प्राप्त होता है, उसे तमोगुण का लक्षण समझना चाहिए ।

17. **येनास्मिन् कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।**
**न च शोचत्यसंपत्तौ तद् विज्ञेयं तु राजसम् ।।36।।**
व्यक्ति इस लोक में जिस कर्म से महती प्रसिद्धि को पाना चाहता है, फल की प्राप्ति न होने पर दुःखी होता है, उसे रजोगुण जानना चाहिए ।

18. **यत् सर्वेणच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।**
**येन् तुष्यति चात्माऽस्य तत् सत्त्वगुणलक्षणम् ।।37।।**
जो कर्म को पूर्णतया जानने की इच्छा करता है और जिसे करता हुआ उसका अन्तरात्मा लज्जित नहीं होता, प्रत्युत सन्तुष्ट होता है—वह कर्म सत्त्वगुण सम्पन्न होता है ।

19. **देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।**
**तिर्यक्त्वं तामसा नित्यम् इत्येषा त्रिविधा गतिः ।।40।।**
प्राणी सत्त्वगुण की बहुलता से देवत्व को प्राप्त होते हैं । रजोगुण की प्रधानता से मनुष्य और तमोगुण की अधिकता से पशु-पक्षी की गति को प्राप्त होते हैं ।

20. **इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।**
**पापान् संयान्ति संसारान् अविद्वांसो नराधमाः ।।52।।**
इन्द्रियों के विषयोपभोग में निरत रहने से, धर्म छोड़ अधर्म का पालन करने से मूर्ख और नीच लोग पापी बन जाते हैं । ऐसे मनुष्य नीच जन्म, अर्थात् बुरे-बुरे दुःख रूप जन्म को पाते हैं ।

21. **यथा यथा निषेवन्ते विषयान् विषयात्मकाः ।**
**तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ।।73।।**

विषयी पुरुष ज्यों-ज्यों विषयों का उपयोग करते हैं, त्यों-त्यों उन विषयों में उनकी रुचि बढ़ती जाती है ।

**22. तेऽभ्यासात् कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ।**
**संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ।।74।।**

उन-उन पापयुक्त विषयों के पुनः पुनः उपभोगरूप अभ्यास से अल्पबुद्धि जन उन विषयों से उत्पन्न पापकर्मों को बारम्बार करते हैं और उनके कारण भिन्न-भिन्न जन्मों में दुःख पाते हैं ।

**23. यादृशेन च भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।**
**तादृशेन शरीरेण तत्तत् फलमुपाश्नुते ।।81।।**

जिस-जिस प्रकार की अच्छी या बुरी भावना से जो-जो कर्म किया जाता है, उसका कर्मफल भी उस प्रकार के शरीर से भोगा जाता है ।

**24. वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानम् इन्द्रियाणां च संयमः ।**
**अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ।।83।।**

वेदाभ्यास तप, व्रतसाधना, ज्ञान, सत्य विद्वाओं की प्राप्ति, इन्द्रिय-संयम, अहिंसा और गुरु-सेवा ये छः कर्म मोक्ष के देने वाले सर्वोत्तम कर्म हैं ।

**25. सर्वभूतेषु चात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ।**
**समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ।।91।।**

सब प्राणियों में परमात्मा को और परमात्मा में सब प्राणियों को समान भाव से देखता हुआ आत्मयज्ञ वाला परम सुख अर्थात् मुक्ति को पाता है ।

**26. यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।**
**आत्मज्ञाने शमे च स्याद् वेदाभ्यासे च यत्नवान् ।।92।।**

संन्यास अवस्था में यज्ञादि कर्म-काण्ड सम्बन्धी कर्मों को छोड़कर, विद्वान् को आत्म-ज्ञान, शान्ति और वेदाभ्यास में चिन्तन मग्न होना चाहिए ।

**27. या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।**
**सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।। 95 ।।**
जो स्मृतियां ग्रंथ वेदविरुद्ध हैं अथवा जो कुत्सित पुरुषों ने बनाये हैं, वे सभी दुःख सागर में डुबोने वाले हैं और उन्हें तमोनिष्ठ अर्थात् अज्ञान से परिपूर्ण कहा गया है । असत्य, अंधकाररूप इस लोक और परलोक में दुःखदायक है ।

**28. चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश् चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।**
**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति ।। 97 ।।**
चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), तीन लोक (पृथिवी, आकाश और द्युलोक), चारों आश्रम, भूत, वर्तमान और भविष्य सभी व्यवस्थाओं और विद्याओं का ज्ञान वेद से ही प्राप्त होता है ।

**29. बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।**
**तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ।। 99 ।।**
यह सनातन वेदशास्त्र सभी प्राणियों को धारण कर रहा है । इसलिए इसे मैं सबसे उत्तम मानता हूँ । यह प्राणीमात्र का अभीष्ट सिद्धि का साधन है । सभी जीवों के सुख का साधन यही है ।

**30. यथा जातबलो वह्निर् दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।**
**तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ।। 101 ।।**
जैसे प्रचण्ड अग्नि गीले वृक्षों को भी भस्मसात् कर देती है, इसी प्रकार वेद को जानने वाला अपने सभी दोषों को नष्ट कर अपनी आत्मा को पवित्र रखता है ।

**31. वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।**
**इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। 102 ।।**
वेदशास्त्र के अर्थ तत्त्व को जानने वाला व्यक्ति, जिस किसी भी आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) में रहता हुआ इसी जन्म में ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए अधिक समर्थ हो जाता है ।

**32. तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।**
**तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।। 104 ।।**

विद्वान् के लिए तप और विद्या कल्याणकारक हैं । तप से पापवृत्ति नष्ट हो जाती है और वेदादि सत्य विद्या से अमरता अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

**33. आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।**
**यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ।। 106 ।।**

जो व्यक्ति ऋषियों द्वारा कहे हुए धर्मतत्त्व को उस तर्क से प्रमाणित कर लेता है, जो कि तर्क वेदशास्त्र के अनुकूल है, वह व्यक्ति धर्म को जान पाता है अन्य नहीं ।

**34. अनाम्रातेषु, धर्मेषु कथं स्यादिति चेद् भवेत् ।**
**य शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः ।। 108 ।।**

जिन धर्मों का शास्त्रों में बखान नहीं किया गया, उनके सम्बन्ध में यदि शंका उत्पन्न हो कि क्या वे धर्म प्रमाणित हैं या नहीं, तो शिष्टजन जिसको कहें, उसे निश्शंक हो धर्म समझ लेना चाहिए ।

**35. दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत् ।**
**त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ।। 110 ।।**

शुभ आचार वाले दस व्यक्तियों की अथवा तीन व्यक्तियों की परिषद् (सभा) जिस धर्म (कर्त्तव्य कर्म) की कल्पना करे उस धर्म का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए ।

**36. त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।**
**त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद्दाशावरा ।। 111 ।।**

वेदत्रयी के ज्ञाता तीन व्यक्ति, न्यायशास्त्री, तर्कशास्त्री (मीमांसक), भाषाशास्त्री, धर्म (मानवादि) वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ–इन उपर्युक्त 10 पुरुषों की परिषद् होनी चाहिए ।

**37. ऋग्वेदविद् यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।**
**त्र्यवरा परिषज् ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ।। 112 ।।**
ऋग्वेद का ज्ञाता, यजुर्वेद का पण्डित और सामवेद का वेत्ता इन तीनों पर आधारित परिषद् को धर्मसम्बन्धी संशयों के निर्णय करने के लिए होना चाहिए ।

**38. एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।**
**स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ।। 113 ।।**
अकेला वेदवित् विद्वान् जिस धर्म की व्यवस्था करे, वह धर्म परमधर्म समझना चाहिए, इसके विपरीत हजारों, लाखों मूर्ख भी मिलकर जिसको धर्म कहें, वह धर्म नहीं समझना चाहिए । वेदानुकुल ही श्रेष्ठ धर्म है ।

**39. सर्वमात्मनि संपश्येत् सच्चासच्च समाहितः ।**
**सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन् नाधर्मे कुरुते मनः ।। 118 ।।**
जो सावधान पुरुष एकाग्रचित होकर सत् और असत् का अपने हृदय में विचार करता है । इस प्रकार जो सर्वत्र अपनी आत्मा में परमात्मा का दर्शन करता है, उसका मन अधर्म में कभी भी प्रवृत्त नहीं होता ।

**40. आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।**
**आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ।। 119 ।।**
परमेश्वर ही पंच महाभूतों से सब प्राणियों की उत्पत्ति करके उनमें व्याप्त होकर तथा अग्नि आदि देवताओं को रचने वाला है । जिसमें सब जगत् स्थित है वह सब मनुष्यों का उपास्यदेव तथा जीवों का पाप पुण्य के फलों का देने हारा है ।

**41. प्रशासितारं सर्वेषाम् अणीयांसमणोरपि ।**
**रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ।। 122 ।।**
जो सब को शिक्षा देने हारा सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप समाधिस्थ

बुद्धि से जानने योग्य है । उसको ही परम पुरुष जानना चाहिए ।

**42. एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।**
**इन्द्रमेके परे प्राणाम अपरे ब्रह्म शाश्वतम् । । 123 । ।**

इसी परमपुरुष को सभी ऋषि-मुनि अग्नि, मनु, प्रजापति, इन्द्र, प्राण, सबका जीवन मूल होने से शाश्वत् ब्रह्म कहते हैं । निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ब्रह्म है ।

**43. एष सर्वाणि भूतानि पंचभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।**
**जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् । । 124 । ।**

वह परमात्मा सब प्राणियों में पंचमहाभूतों सब प्राणियों को युक्त करके अर्थात् उनकी उत्पत्ति करके और व्याप्त होकर नित्य चक्र के समान नित्य जन्म, वृद्धि और क्षय से संसार को घुमाता रहता है ।

**44. एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यमात्मानमात्मना ।**
**स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् । । 125 । ।**

जो व्यक्ति समाधि योग से सभी प्राणियों में अवस्थित अपने आत्मा को देखता है, वह सभी प्रकार की समता को प्राप्त करके परम पद जो ब्रह्म परमात्मा है उसको प्राप्त कर लेने से आनन्द का अनुभव होता है ।

## लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी
17. ओ३म्

## लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक मनुस्मृति
2. वैदिक उपनिषद्वाणी
3. वैदिक दर्शनवाणी
4. वैदिक महाभारत
5. वैदिक गीता
6. अमर धर्मग्रंथ
7. अमर नीतिग्रंथ
8. पुराणपरिचय
9. ईश्वरसिद्धि
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी
11. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
12. महावीर हनुमान
13. योगिराज श्रीकृष्ण
14. आदिशंकराचार्य
15. आचार्य चाणक्य
16. दस गुरु
17. आर्यसमाज के महामानव
18. स्वामी रामतीर्थ
19. संस्कार
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. आत्मकथा
28. भतृहरि शतक
29. ब्रह्मचर्य
30. गृहस्थ
31. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
32. **Great Thoughts**
33. **General English**
    **(Part I to V)**
    **(For All Classes)**

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी वैब साईट **www.dpkapoorbooks.co.in** पर भी देखा जा सकता है।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. आर्यसमाज के महामानव
4. आदिशंकराचार्य
5. आचार्य चाणक्य
6. अमर नीतिग्रंथ
7. अमर धर्मग्रंथ
8. दस गुरु
9. ईश्वरसिद्धि
10. गायत्रीरहस्य
11. ज्ञानामृत
12. गीतांजलि
13. क्या आप जानते हैं ?
14. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
15. महावीर हनुमान
16. महर्षि दयानंद
17. ओ३म्
18. पुराणपरिचय
19. राष्ट्रभाषा हिन्दी
20. संस्कार
21. संत
22. संतवाणी
23. स्वामी विवेकानंद
24. स्वामी रामतीर्थ
25. शरणागति
26. शेर-ओ-शायरी
27. सामान्य हिन्दी
    (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. वैदिकसाहित्य
29. वैदिक उपनिषद्वाणी
30. वैदिक दर्शनवाणी
31. वैदिक रामायण
32. वैदिक महाभारत
33. वैदिक गीता
34. योगिराज श्रीकृष्ण
35. यज्ञ
36. आत्मकथा
37. भर्तृहरिशतक
38. ब्रह्मचर्य
39. गृहस्थ
40. वैदिक मनुस्मृति
41. **Great Thoughts**
42. **General English**
    **(Part I to V)**
    **(For All Classes)**